लेखक की ५८ वीं प्रकाशित पुस्तक—

सम्मेलन के नवरत्न

डा० धीरेन्द्र वर्मा पुस्तक-संग्रह

लेखक,

उमाशंकर

प्रकाशक :

महेशनारायण साहित्य शोध संस्थान,

महेशनारायण नगर, दुमका।

प्रथम संस्करण— ११००]

[मूल्य—दो रुपये।

प्रकाशक,

महेशनारायण साहित्य शोध संस्थान,
महेशनारायण नगर, दुमका ।

मुद्रक,

केदारनाथ, एम. ए.
श्री वैद्यनाथ प्रेस,
वैद्यनाथ-देवघर (स.प.)

सम्मेलन के नवरत्नों को जिनके सम्मान में
इस पुस्तक की रचना हुई है,
सादर समर्पित।

—उमाशंकर

प्रकाशकीय

महेशनारायण साहित्य शोध संस्थान के प्रधानमन्त्री श्री उमाशंकर जी ने बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन का ३१ वाँ अधिवेशन दुमका में करने से लिए आमंत्रण दिया और सम्मेलन की कार्यकारिणी समिति ने उसे स्वीकार कर न केवल संस्थान के परिवार को बल्कि सारे सन्ताल परगना जिले को गौरवान्वित किया। लगभग ३६ वर्ष पूर्व सम्मेलन का १० वाँ अधिवेशन, स्वामी भवानीदयाल संन्यासी की अध्यक्षता में देवघर में सुसम्पन्न हुआ था। उसके बाद ऐसा शुभ अवसर इस जिले को प्राप्त नहीं हुआ था। अतः सम्पूर्ण जिले में सम्मेलन के अधिवेशन को सफल बनाने के लिए उत्साह आ गया।

महेशनारायण साहित्य शोध संस्थान ने निश्चय किया कि उस अवसर पर सम्मेलन के नव-रत्नों को सम्मानित किया जाय। निम्नलिखित व्यक्तियों को सम्मानित करने की योजना बनाई गई—श्री ललित कुमार सिंह 'नटवर', राजा राधिका रमण सिंह, आचार्य बदरीनाथ वर्मा, प्राचार्य मनोरंजन, पं० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी, पं० छबिनाथ पाण्डेय और श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित। श्री ललित कुमार 'नटवर' को छोड़कर बाकी आठ सम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष

रह चुके हैं। श्री ललित कुमार 'नटवर' कतिपय कारणों से दुर्भाग्यवश सम्मेलन के अध्यक्ष अब तक नहीं हो सके। पर सम्मेलन के किसी भी अध्यक्ष से सम्मेलन के लिए उनका महत्त्व कम नहीं रहा है। सम्मेलन के वे संस्थापकों में रहे हैं।

संस्थान ने यह भी निश्चय किया कि उस अवसर पर उपर्युक्त नवरत्नों का जीवन परिचय भी प्रकाशित किया जाय। समय कम था फिर भी यह कार्यभार संस्थान के प्रधानमन्त्री श्री उमाशंकर जी को सौंपा गया और श्री उमाशंकर जी ने सम्मेलन के नवरत्न, पुस्तक २० दिनों के अन्दर तैयार कर हमें दे दी। पुस्तक आपके सामने है, उसके सम्बन्ध में मुझे कुछ कहना नहीं है।

संस्थान ने भारत के प्रधान मन्त्री स्व० लालबहादुर शास्त्री की स्मृति में 'लाल बहादुर शास्त्री बालोद्यान' की स्थापना की है। इस पुस्तक की बिक्री से जो आय होगी उसे इस बालोद्यान के मद में खर्च किया जायेगा।

जयेन्द्र

महेशनारायण नगर, प्रकाशन मन्त्री

दिनांक ३ अप्रैल, १९६६ महेशनारायण साहित्य शोध संस्थान,

दुमका (स०प०)

लेखक-परिचय

पुरानी जनश्रुति है कि महर्षि व्यास ने पुराणों और महाभारत को जब अक्षरों में अङ्कित करना चाहा तो प्रश्न उपस्थित हो गया कि उस विशाल ज्ञानराशि को लिपिबद्ध करे तो कौन ? उस समय गणेशजी का आह्वान किया गया और उन्होंने व्यासदेव के सम्पूर्ण वाङ्मय को कलम पर उतार दिया। इसी के चलते गणेशजी सर्वप्रथम आशुलिपिक माने जाते हैं। व्यासदेव अपने से लिख सकने में असमर्थता प्रतीत कर रहे थे और गणेशजी केवल लिख सकते थे—उनकी अपनी ज्ञाननिधि नहीं थी। दोनों का सहयोग हुआ और दोनों के सम्मिलित प्रयास से संसार को ज्ञान का भण्डार प्राप्त हुआ। आज न व्यासदेव हैं न गणेश, किन्तु दोनों की प्रतिभा और क्रियाशक्ति उमाशङ्करजी में सिमट कर साथ-साथ खेल रही है। उमाशङ्करजी जितना जानते हैं उससे अधिक लिखते हैं और जितना लिखते हैं उससे अधिक जानते हैं। विलक्षण प्रतिभा और क्रियाशक्ति का मूर्त्तरूप एक साधारण व्यक्तित्व में इस प्रकार दृष्टिगोचर हो रहा है कि उनके सामान्य और नित्यजीवन को देख-सुनकर किसी को विश्वास नहीं होता है कि उमाशङ्करजी यथार्थ में वही हैं जो उनके कृतित्व में स्पष्ट होता है। व्यक्तित्व और कृतित्व की एकरूपता अत्यधिक विरल होती है। सुकरात और गांधी से लेकर विनोबा और नागार्जुन तक उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। रवीन्द्र और जवाहर

अपवाद स्वरूप ही माने जायेंगे। उमाशंकर जी को देखने का जिस किसी को अवसर प्राप्त हुआ है वह यही देखता है कि औघड़ साधु-सा अटपटा और बेडौलवेश, अस्पष्ट और लटपटी बोली, किसान और मजदूर जैसी पोशाक, पद और प्रतिष्ठा के विपरीत रहन-सहन, मस्तिष्क और हाथ की विसंगति, आकाश और जमीन को जुटाने वाले, कल्पना के धागे को खोलने और लपेटने में व्यस्त कार्यव्यापार उमाशङ्कर जी के नित्यजीवन का सामान्य रूप है जो लोकदृष्टि से परे अपने अभीष्ट से सान्निध्य प्राप्त कर रहा है। एक साधक को जैसा होना चाहिए, साधना के पथ पर वह आगे जा रहा है—न थकावट है न परिक्लांति, न निराशा है न निरुद्यम, न बिलकुल सन्तोष है न अत्यधिक असन्तोष, स्पृहा है न घृणा, न प्रतिस्पर्धा न प्रतियोगिता। वह जा रहा है, जा रहा है—कहाँ अन्त होगा पता नहीं। एक पागल जैसा राख और मिट्टी के ढूह से खोद-खोद कर कुछ न कुछ निकालते रहता है और लोग देखकर आश्चर्यित होते हैं जब उसके कर्म व्यापार में रह-रह कर ऐसे रत्न निकल आते हैं जिनकी सत्यता पर विश्वास से अधिक विस्मय होता है। उमाशंकर जी की साधना की यही विशेषता है कि वह विस्मृत मृतों को ही जीवित नहीं कर देता बल्कि जीवित मृतों को भी जीवित कर देता है। बाबू महेशनारायण, मुन्शी राधालाल माथुर, बाबू गोविन्द चरण, बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री तथा अनेक अन्य साहित्यिक महापुरुषों को साहित्य के इतिहास में यथास्थान बैठाकर एक चकाचौंध उपस्थित कर दिया है।

केवल चौआलीस वर्ष की आयु में उमाशङ्कर जी ने लगभग साठ ग्रन्थ लिखे हैं। साहित्य, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति तथा अन्य विषयों पर इतने कम समय में इतना अधिक लिखना केवल भारतेन्दु के लिए ही सम्भव कहा जाता था। आज उमाशंकर जी उसी कोटि में आ गए हैं। मैं यह नहीं कहूँगा कि जितने ग्रन्थ उन्होंने लिखे हैं सब के सब उच्चकोटि के हैं और साहित्यिक मान्यता में वे अग्रगण्य हैं, फिर भी इतना तो निस्संकोच कहा जायगा कि जिन विषयों और व्यक्तियों को उन्होंने प्रकाश में लाया है उनको लोग भूले हुए थे और उनके जीवन का मूल्यांकन हुआ ही नहीं था। आजतक कौन जानता था और कौन मानता था कि खड़ी बोली में कविता करना बाबू महेशनारायण ने उस समय शुरू किया था जब भारतेन्दु ने हार मानकर लिख दिया था कि खड़ी बोली में कविता लिखी नहीं जा सकती है। यह भी बहुत कम लोग जानते थे कि बाबू महेशनारायण संताल परगना (राजमहल-बभनगामा) के रहने वाले थे और संताल परगना के उस महापुरुष ने ही बिहार को बिहार बनाने का सर्वाधिक और सर्व प्रथम प्रयास किया था। संताल परगना के मुख्य नगर दुमका में महेशनारायण साहित्य शोध संस्थान की स्थापना उमाशंकर जी के जीवन का एक ऐतिहासिक कार्य है।

एक सरकारी पदाधिकारी रहकर साहित्यिक कार्य करने की जो प्रवृत्ति उमाशंकर जी में देखी जाती है उसका एक अंश भी साहित्य साधकों में आ जाय तो साहित्य का उद्धार हो जाए। मैं उमाशंकर जी के दीर्घजीवन की कामना करता हूँ। ईश्वर उन्हें शतायु करें।

श्री बुद्धिनाथ झा 'कैरव'

भू० पू० अध्यक्ष, जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन, स० प०

सम्मेलन के नवरत्न

—श्री उमासंकर

बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन

बिहार में साहित्य की चर्चा बहुत दिनों से साहित्य सम्मेलनों द्वारा होती आयी है। इतिहास में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनके द्वारा यह प्रमाणित होता है कि साहित्यिक समस्याओं के समाधान के लिए समय-समय पर ऋषियों की मंडली इकट्ठी होती थी। उन बैठकों में साहित्य-चर्चा होती थी। जनक जी ने एक बार साहित्य-सम्मेलन कराया था। कहा जाता है कि याज्ञवल्क्य उसके प्रधान वक्ता थे। उसमें गार्गी भी सम्मिलित हुई थी। उसमें ब्रह्म-साहित्य पर विवाद हुआ था। इस सम्मेलन के प्रधान वक्ता को एक हजार गौएँ दी गई थीं। बौद्ध-साहित्य पर विचार करने के लिए सम्राट अशोक ने नालन्दा विश्वविद्यालय में एक सम्मेलन कराया था। इस सम्मेलन में पाली भाषा के हीनयान सम्बन्धी ग्रन्थों की आलोचना और निर्माण हुए थे। हिन्दी साहित्य पर अखिल भारतीय स्तर पर विचार करने के लिए सन् १६०२ में एक सम्मेलन सोनपुर में हुआ था। तब तक अखिल भारतीय स्तर पर कोई भी साहित्यिक संस्था गठित नहीं हुई थी। इस सम्मेलन के कर्त्ता मुजफ्फरपुर के श्री अयोध्या प्रसाद खत्री थे। उस सम्मेलन में बिहार से बाहर के अनेक साहित्यकारों ने भाग लिया था। हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के प्रचार-प्रसार के सम्बन्ध में एक कार्य-क्रम निर्धारित किया गया था, जिसमें कुछ इस प्रकार थे :

(१) हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए देश में स्थान-स्थान पर नागरी प्रचारिणी-सभा, पुस्तकालय और वाचनालय खुलवाया जाय :

(२) प्रारम्भिक शिक्षा के लिए नागरी अक्षरों में पुस्तकें छापने की व्यवस्था की जाय ;

(३) प्रत्येक नागरिक को हिन्दी सीखने, पढ़ने और बोलने के लिए अभ्यास कराया जाय।

(४) अदालतों में नागरी अक्षरों और हिन्दी भाषा का प्रयोग अधिक से अधिक किया जाय।

इस सम्मेलन का उल्लेख करते हुए पं० सकल नारायण शर्मा ने बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद से कहा था- 'स्वर्गीय अयोध्या प्रसाद खत्री ने आरा नागरी प्रचारिणी सभा को पचास रुपये हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन करने के लिए दिये थे। सभा ने आन्दोलन भर किया था, पर सफलता न मिली। फिर बाबू साहेब (खत्री जी) के उद्योग से हरिहर क्षेत्र में एक छोटा-मोटा सम्मेलन हुआ। पर अधिक दिन तक नहीं चल सका और उनके स्वर्गवासी हो जाने पर उसकी चर्चा ही बन्द हो गई। उसके कई वर्ष के बाद चिलहरी (डुमराँव) के श्री युक्त पं० उमापतिदत्त शर्मा, बी०ए० ने सम्मेलन के लिए बहुत उद्योग किया और स्वयं आर्थिक सहायता देने का वचन दिया, पर हिन्दी के दुर्भाग्यवश इनका भी अकाल ही में देहान्त हो गया और सभा ने जो आन्दोलन उसके लिए उठाया था वह जहाँ का

तहाँ रह गया। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने इस प्रश्न को नये सिरे से उठाया था तथा वही भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन को जन्मदात्री बनी। पर उसका आदि जनक मुजफ्फरपुर ही है। यह देखकर उक्त बाबू साहेब (खत्री जी) की आत्मा स्वर्ग में कितनी प्रसन्न होती होगी, यह कल्पना करने पर आनन्द होता है। वास्तव में सम्मेलन का बीज-रोपन इसी प्रान्त (बिहार) ने किया और उसे सींच कर वृक्ष के आकार में खड़ा करने का श्रेय काशीनागरी प्रचारिणी सभा को प्राप्त है। बहुतों को यह जानकारी है कि काशी नागरी प्रचारिणी सभा को भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की जन्म-दात्री बनने की प्रेरणा राष्ट्रमूर्ति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी ने ही दी थी।

अखिल भारतवर्षीय साहित्य सम्मेलन का नवम अधिवेशन बम्बई में हुआ था। उस अधिवेशन में डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने दशम सम्मेलन के लिए बिहार की ओर से उसे आमन्त्रित किया। पटना में दशम सम्मेलन को करने का निश्चय हुआ। डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी की देखरेख में स्वागत की तैयारी आरम्भ हुई। बाबू जी ने बेतिया के श्री पीर मुहम्मद मूनिस जी को स्वागत समिति के कार्यालय के संचालन के लिए पटना बुलाया था। मूनिस जी ने बाबू जी के सामने एक प्रस्ताव रखा कि अधिवेशन के पूर्व बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन का गठन किया जाय। तब तक संयुक्त प्रान्त और मध्यप्रदेश में प्रादेशिक सम्मेलन स्थापित हो चुके थे। बाबू जी को यह राय पसन्द आयी। फिर क्या था, बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन

के संगठन की भावना लेकर मूनिस जी १० अक्टूबर, १६१६ को मुजफ्फरपुर आये। वहाँ से वे भगवानपुर स्वर्गीय रामधारी प्रसाद विशारद के पिता श्रीयुक्त बासदेवनारायण से मिलने गये। वहाँ उन्होंने अपनी बातों के क्रम में सम्मेलन की चर्चा की। उसके संगठन पर जोर दिया। मूनिस जी रामधारी बाबू को लेकर मुजफ्फरपुर आये। अनेक लोगों से इस सम्बन्ध में उन लोगों की बातें हुईं; कुछ ने सहयोग देने का वचन दिया; पर कुछ ऐसे भी लोग उन्हें मिले जिन्होंने उत्साहवर्द्धक एक वाक्य भी उनलोगों से नहीं कहा। मुजफ्फरपुर नगरपालिका के तत्कालीन चेयरमैन स्वर्गीय वैद्यनाथ सिंह ने उन लोगों को बहुत उत्साह दिया और अधिवेशन कराने में जहाँ तक अर्थ का सम्बन्ध था, उन्होंने उसका भार अपने ऊपर ले लिया। राजेन्द्र बाबू को उन लोगों ने एक पत्र लिखा। इस पत्र पर निम्नलिखित व्यक्तियों ने हस्ताक्षर किया: सर्वश्री लक्ष्मीनारायण गुप्त, लक्ष्मीनारायण सिंह, पीर मुहम्मद मूनिस, लतीफ हुसैन 'नटवर' तथा मथुरा प्रसाद दीक्षित। 'पाटलिपुत्र' में इन लोगों का एक वक्तव्य भी प्रकाशित हुआ। राजेन्द्र बाबू ने उन्हें उत्साहित किया, पाटलिपुत्र के सम्पादक ने उनका समर्थन किया और बिहार के अन्य क्षेत्रों से सहयोग मिलने का आश्वासन उनलोगों को प्राप्त हुआ। इस प्रकार बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जन्म १८ नवम्बर, १६१६ को सोनपुर में हुआ। उसका पहला अधिवेशन सोनपुर में ८ और ६ नवम्बर, सन् १६१६ को हास्यरसावतार स्व० पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

स्वर्गीय श्री रामधारी प्रसाद विशारद ने कहा है कि बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना बिहार प्रान्त में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि के आन्दोलन के इतिहास में एक स्मरणीय घटना समझी जायेगी। बिहार हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र है। यहाँ हिन्दी का एकछत्र राज्य है। इस प्रान्त में अन्य प्रांतों की भाँति अन्य किसी सहवर्तिनी भाषा से हिन्दी को संघर्ष नहीं करना पड़ा है। यह सत्य है कि ग्रियर्सन महोदय ने भोजपुरी, मैथिली और मगही आदि बोलियों में अलग-अलग पुस्तक छपवा कर बिहारवासियों में फूट का बीज बो दिया था और उनके ही प्रयास के फलस्वरूप मैथिली सभा से नागरी लिपि बहिष्कृत हुई। फिर भी हम यह समझते रहे कि मैथिली, भोजपुरी और मगही हिन्दी की ही उपभाषाएँ हैं, उसकी अन्तर्भाषायें हैं। इन आञ्चलिक भाषाओं में जो साहित्य का निर्माण हो रहा है, जो साहित्य के सृजन-कार्य हो रहे हैं, उनसे हिन्दी अपना ही गौरव मानती है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि बिहार राज्य में हिन्दी का विकास-पथ बड़ा सुगम रहा है—उसके पथ पर फूल ही बिखरे हुए थे। हिन्दी को अपना अस्तित्व बचाने के लिए कठिन प्रयास करना पड़ा है, चारों ओर से उसका विकास बन्द था। बिहार में राष्ट्रभाषा का आन्दोलन सन् १८६५ में आरम्भ हुआ। यह आन्दोलन सन्ताल परगना जिले के श्री गोविन्द चरण जी के नेतृत्व में आरम्भ हुआ था। इस समय हमें यह प्रमाणित करना पड़ा था कि बिहारियों की मातृभाषा हिन्दी है। सरकार ने सन् १८३७ में राजकीय भाषा विधेयक द्वारा यह

मान लिया था कि बिहारियों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है। उस आन्दोलन में वे सफल हुए थे। सन् १९२० के बाद राष्ट्र-भाषा आन्दोलन का दूसरा चरण आरम्भ हुआ। यह आन्दोलन बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से आरम्भ हुआ। बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इतिहास के प्रत्येक पृष्ठ पर हिन्दी के संघर्ष की कहानी अंकित है। यह कहानी उतनी ही रोचक है जितनी भारतीय स्वतन्त्रता की कहानी। हिन्दी के इस संघर्ष में हमारे कितने पूर्वज खप गए तप गए और हम ऐसे हैं कि उनकी स्मृति को भी अपने मानस पटल से हटाते जा रहे हैं। हमारे इतिहास के पंडित उन्हें मिट्टी के नीचे गाड़ते जा रहे हैं। आज जब हम बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन का ३१ वाँ अधि-वेशन दुमका में कर रहे हैं, तब हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि उन महान् आत्माओं के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें। हम बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इस ऐतिहासिक अधिवेशन के अवसर पर उनके प्रति स्मृति-तर्पण करते हैं।

बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने हिन्दी-भाषा एवं साहित्य तथा देवनागरी-लिपि के सर्वाङ्गीण विकास और प्रसार के लिए एक व्यापक कार्यक्रम निर्धारित किया, जिसमें निम्न-लिखित कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं:—

(१) देश-विदेश के समस्त प्रयोजनों के लिए हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का उपयोग;

(२) हिन्दी-भाषा और देवनागरी–लिपि को अधिकाधिक सुगम, सुबोध एवं सुन्दर बनाने के लिए उनके अभावों की

पूर्त्ति तथा उनके स्वरूपों का विकास ;

(३) हिन्दी में उच्चकोटि के साहित्य का निर्माण और प्रकाशन का अयोजन ;

(४) बिहार राज्य के सभी विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा एवं परीक्षा के माध्यम के रूप में हिन्दी-भाषा के व्यवहार का आयोजन ;

(५) बिहार राज्य सरकार द्वारा संचालित विभिन्न प्रतियोगिता-परीक्षाओं के माध्यम के रूप में हिन्दी-भाषा तथा देवनागरी लिपि के व्यवहार और उनमें एक अनिवार्य विषय के रूप में हिन्दी के समावेश के लिए प्रयत्न करना ;

(६) हिन्दी-भाषा-साहित्य के अध्ययन तथा अनुशीलन की समुचित व्यवस्था ;

(७) बिहार की विभिन्न लोकभाषाओं के संकलन, संरक्षण, सम्पादन और प्रकाशन की व्यवस्था करना।

इन उद्देश्यों की सम्यक् सिद्धि के लिए बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन अपने जन्म से प्रयत्नशील रहा है।

हिन्दी भाषा एवं नागरी लिपि का प्रचार कार्य सम्मेलन के माध्यम से सिंहभूमि, मानभूमि एवं सन्ताल परगना में आरम्भ किया गया। इन जिलों में हिन्दी प्रचारक भेजे गये। वहाँ हिन्दी सभाएँ कायम की गईं। जहाँ इन जिलों के आदिनिवासी पहले हिन्दी भाषा और देव नागरी लिपि द्वारा ही शिक्षा प्राप्त करते थे, वहाँ रोमन लिपि के माध्यम से उन्हें शिक्षा दी जाने लगी थी ; यह काम एक संगठित ढंग से हो रहा

था। सम्मेलन ने इसका विरोध किया। उन क्षेत्रों में रचनात्मक काम आरम्भ किया। हिन्दी प्रचारकों की नियुक्तियाँ भी हुईं। जहाँ-तहाँ हिन्दी-प्रचार के लिए रामायण-मंडलियाँ भी स्थापित की गईं। सन्ताल परगना में भी इस प्रकार के कुछ काम हुए, पर अधिक काम सन् १९३३ के बाद आरम्भ हुए। भागलपुर में सम्मेलन का एकादश अधिवेशन हुआ। डाक्टर काशी प्रसाद जायसवाल उसके अध्यक्ष थे। उस अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित कर सन्ताल परगना में हिन्दी प्रचार के लिए एक प्रचार समिति बनायी गई; जिसके नियोजक पं० बुद्धिनाथ झा 'कैरव' थे। कैरव जी उन दिनों देवघर साहित्य विद्यालय के प्रधानाध्यापक थे। उन्होंने साहित्य विद्यालय से सन्ताल विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा दी की वे शिक्षा पाकर सन्ताली भाषा को नागरी लिपि में लिखने लगे। सन्ताली भाषा का अध्ययन होने लगा। सन्ताली एवं पहाड़ियों की बस्तियों में हिन्दी की प्रारम्भिक पाठशाला खोली गई। हिंदी विद्यापीठ के अन्तर्गत ग्राम-पाठशालायें काफी खोली गईं। सन् १९३९-४० में बिहार सरकार की निरक्षरता निवारण समिति ने सन्तालों को पढ़ाने के लिए आरम्भिक पुस्तकों को रोमन लिपि में छापने का निर्णय लिया, सम्मेलन ने इसका विरोध किया। सम्मेलन के विरोध के कारण ही सरकार को अपना निर्णय बदलना पड़ा। सम्मेलन की ओर से देवनागरी लिपि में सन्ताली पुस्तकें छापी गईं। सम्मेलन के प्रयत्नों के फलस्वरूप पटना विश्वविद्यालय ने सन्ताली भाषा को मैट्रिकुलेशन परीक्षा के लिए स्वीकृत किया

और उसके लिए एक 'बोर्ड आफ सन्ताली स्टडीज' बनवा दिया।

राष्ट्रभाषा आन्दोलन के दूसरे चरण का, जो सन् १९२० से आरम्भ हुआ, नेतृत्व बिहार में सम्मेलन ने ही किया। सन् १९२५ में बिहार सरकार ने 'वर्नाक्यूलर डेभलपमेन्ट कमिटी' नाम की एक समिति बनायी थी। इस समिति ने जो निर्धारित नीति अपनायी, उसका विरोध सम्मेलन ने किया। उसकी सिफारिशों के विरोध में एक प्रान्तव्यापी आन्दोलन किया। उन सिफारिशों में एक यह भी सिफारिश थी कि सरकारी कचहरियों में देवनागरी लिपि के साथ साथ फारसी लिपि के व्यवहार की आज्ञा बिहार सरकार दे। सम्मेलन के प्रचार के फलस्वरूप बिहार प्रान्त में हजारों सभायें हुईं और लाखों आदमियों ने उन सिफारिशों के विरोध में अपने हस्ताक्षर भेजे। इस विरोध का फल यह हुआ कि बिहार सरकार ने उक्त समिति की सिफारिशों को रद्द कर दिया। फिर भी सन् १९२८ में किसी अहिन्दी भाषा–भाषी सज्जन ने बिहार काउन्सिल में एक प्रस्ताव लाया कि बिहार की कचहरियों में फारसी लिपि को व्यवहार में लाने की आज्ञा दी जाय। इस प्रकार के प्रस्ताव पहले भी तीन बार आ चुके थे, जो बहुमत से अस्वीकृत हो चुके थे। इसबार यह प्रस्ताव इसलिए लाया गया कि स्वराजी सदस्य मद्रास कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार काउन्सिल में उपस्थित नहीं होते थे और सरकारी सदस्यों को यह सरकार की ओर से आदेश था कि वे विवाद्-पूर्ण प्रश्न से अपने को अलग रखें। ऐसी स्थिति में भी एकमत

से निर्णय हुआ कि फारसी लिपि का देवनागरी लिपि के साथ व्यवहार हो। सम्मेलन ने इसका विरोध किया।

कांग्रेस सरकार ने सन् १६३६ में 'हिन्दुस्तानी' समिति बनायी। समान भाषा बनाने के लिए संस्कार बोध शब्दोंकी जब हत्या होने लगी, जब जग जननी सीता बेगम बनायी जाने लगी; आचार्य द्रोण उस्ताद हो गये; कृष्ण का जन्म गर्भ से नहीं हमल से होने लगा; कुमारी द्रोपदी की शादी स्वयंवर में नहीं कराकर, शाहजादी द्रोपदी की शादी मजलिश में करायी गई। सम्मेलन में हमलोगों ने इस पर विचार किया। हमलोगों ने समझा—यह केवल भाषा पर ही आक्रमण नहीं है, यह हमारी संस्कृति पर भी आक्रमण है। हमने इसका विरोध किया। किसी प्रकार का समझौता हमलोग नहीं चाहते थे। 'हिन्दुस्तानी' के ही चलते सम्मेलन के कार्यकर्त्ताओं ने डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद तक का विरोध किया था। हिन्दुस्तानी समिति सम्मान भाषा बनाने में असफल रही।

सम्मेलन के द्वारा हिन्दी को शिक्षण संस्थाओं में स्थान दिलाने के लिए भी चेष्टायें हुईं। सम्मेलन की स्थापना के पूर्व मैट्रिक से लेकर एम. ए. तक कहीं भी हिन्दी को परीक्षा में स्थान प्राप्त नहीं था। सम्मेलन ने अपने पहले ही अधिवेशन में पटना विश्वविद्यालय से अनुरोध किया था कि पटना विश्वविद्यालय की एम. ए० कक्षा तक हिन्दी को पाठ्य विषय बनाया जाय। सम्मेलन के अनुरोध को दृष्टि में रख कर पटना विश्वविद्यालय ने आई० ए०, बी० ए० और एम० ए० के पाठ्य-विषयों में हिन्दी

को स्थान दे दिया ; पर सन् १९२४ ई० के सेशन तक उसके पढ़ाने का प्रबन्ध किसी भी कालेज में नहीं हुआ था। सम्मेलन ने एक शिष्ट मण्डल शिक्षा मन्त्री के पास भेजा। शिक्षा मन्त्री के प्रयास से पटना विश्वविद्यालय ने आई० ए० के छात्रों को सन् १९२५ ई० में एक विषय हिन्दी लेकर परीक्षा देने की अनुमति दे दी। जहाँ-जहाँ कालेजों में पढ़ाने की व्यवस्था नहीं थी। वहाँ-वहाँ सम्मेलन ने उनकी व्यवस्था कराने का एक प्रकार से निश्चय किया। मुजफ्फरपुर में तीन वर्षों तक सम्मेलन के तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्री रामधारी प्रसाद ने उनकी शिक्षा की व्यवस्था की थी, बाद में मुजफ्फरपुर कालेज में हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था हो गई थी। सम्मेलन ने तबतक आन्दोलन को जारी रखा जबतक बिहार के सभी कालेजों में हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था नहीं हो गई।

सम्मेलन के द्वारा हमने केवल हिन्दी पर ही जोर नहीं दिया। हम तो चाहते हैं संसार की सभी प्रमुख भाषाओं का ज्ञान लोगों को हो। इसी उद्देश्य से हमने बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के द्वारा बदरीनाथ सर्वभाषा महाविद्यालय चला रहे हैं। इसमें न केवल भारतीय भाषा ही पढ़ाई जाती है, वरन् फ्रेंच, रूसी, जर्मन, अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं की भी शिक्षा दी जाती है।

सम्मेलन के जन्म हुए लगभग ५७ वर्ष हो रहे हैं। नियमानुसार उसका प्रत्येक वर्ष में अधिवेशन होना चाहिए, पर अभी तक ३० ही अधिवेशन हो पाये हैं। इसका कारण मुख्यतः

सम्मेलन का संघर्ष-जीवन रहा है। सन् १९३६ में सम्मेलन का मुख्यालय पटना बना और उसके पूर्व उसका मुख्यालय मुजफ्फरपुर रहा है। सम्मेलन के पास अपना विशाल भवन है। उसका अपना पुस्तकालय है। उसमें १५००० पुस्तकें हैं। उसके वाचनालय में देश के प्राय: सभी प्रमुख दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकायें आती हैं। उसका अपना अनुशीलन विभाग है। संगीत एवं नृत्य की शिक्षा देने के लिए सम्मेलन बिहार कला केन्द्र को संचालित करता है। समय-समय पर विशिष्ट विद्वानों द्वारा भाषण कराने की व्यवस्था भी सम्मेलन करता है। इस कार्य के लिए बच्चन देवी साहित्य गोष्ठी को सम्मेलन चलाता है। इस गोष्ठी की स्थापना ४ जुलाई, १९५४ ई० को आचार्य शिवपूजन सहाय की दिवंगत पत्नी श्रीमती बच्चन कुमारी देवी की पुण्य स्मृति में उनके शुभ नाम पर की गई है। इस गोष्ठी के संचालन के लिए आचार्य शिवपूजन सहाय ने २०००) दो हजार रुपये बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन को दिये थे। सम्मेलन बिहार के साहित्यिकों की सबल संस्था है। बिहार के सभी जिलों में जिला साहित्य सम्मेलन इसके द्वारा संचालित होता है। इतना ही नहीं, बिहार के प्राय: सभी प्रमुख साहित्यिक संस्थायें इससे सम्बन्धित हैं। बिहार की हिन्दी जनता से आपेक्ष है कि वह अपना योगदान सम्मेलन को देकर अपने प्रांत तथा अपनी भाषा को आगे बढ़ावें। हिन्दी दलदल में फँसी हुई है। इसे उबारने के लिए हमें संघ-शक्ति का सहारा चाहिए। संघ की शक्ति अपरिमित है। अतः जनता के सहयोग के बगैर सम्मेलन अपने निर्धारित लक्ष्य को

प्राप्त नहीं कर सकता है। अबतक सम्मेलन अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचा है, उसका मुख्यतः कारण जनता की उदासीनता ही है। अतः जनता से निवेदन है, अपनी उदासीनता को त्याग कर सम्मेलन को सक्रिय बनाने में अपना योगदान दें।

श्री ललित कुमार सिंह 'नटवर'

हिन्दी में नाटक तो बहुत लिखे गये, पर खेद की बात है कि हिन्दी का अपना कोई रंगमंच नहीं है। हिन्दी के नाटक खेलनेवाली व्यवसायी-कम्पनियाँ तो कई काम करती रही हैं, पर उनका साहित्यिक उद्देश्य नहीं है। इन कम्पनियों के संचालक नाटक को कला की दृष्टि से नहीं, पैसे की दृष्टि से देखते रहे हैं। स्टेजों पर श्रीमान् बेताब जी और 'जौहर' के नाटक असफल ही रहे हैं। यशस्वी नाटककार पं० नारायण प्रसाद 'बेताब' और बाबू हरिकृष्ण जौहर ने चेष्टा की कि व्यवसायी नाटक-कम्पनी में सुधार हो, पर उन्हें सफलता नहीं मिली। ऐसी स्थिति में हिन्दी रंगमंच निर्माण की ओर कुछ साहित्यकारों का ध्यान गया। उन कुछ साहित्यकारों में श्री ललित कुमार सिंह 'नटवर' भी एक हैं।

हिन्दी का अपना रंगमंच हो—यह अखिल भारतीय स्तर पर सर्वप्रथम नारा देने वाले श्री ललित कुमार सिंह 'नटवर' हैं। उन्होंने सन् १६२२ में अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के १२वाँ अधिवेशन में जो लाहौर में हुआ था, हिन्दी रंगमंच की चर्चा चलाई थी। उनके ही प्रयास से उक्त

सम्मेलन में एक हिन्दी-नाट्य-उपसमिति भी गठित की गई। इसके बाद अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपने कलकत्ता अधिवेशन में एक विशद योजना बनायी। २१ साहित्य-सेवियों की एक नाट्य-उपसमिति बनायी गई, जिसके संयोजक नटवर जी ही बनाये गये। उक्त समिति के सदस्य थे—राष्ट्रीय कवि पं० माधव शुक्ल, रङ्गमञ्च सम्पादक पं० नरोत्तम व्यास, पं० राधेश्याम कथावाचक, श्री जयशंकर प्रसाद, माखनलाल चतुर्वेदी, बदरीनाथ भट्ट, कृष्णकान्त मालवीय आदि। ७ जून, १६३१ को इस नाट्य उपसमिति ने अपने निर्णय को व्यक्त करते हुए एक प्रस्ताव द्वारा कहा—हिन्दी-अभिनय कला के नियमों के अनुसार हिन्दी रङ्गमञ्च' निर्माण करने के उद्देश्य से हिन्दी साहित्य सम्मेलन की संरक्षता में हिन्दी रङ्गमञ्च के नाम से एक नाट्य-संस्था स्थापित की जाय। इसके प्रारम्भिक कार्य के लिये कलकत्ता केन्द्र रहे और अगर सम्भव हो तो बाहर की भी नाट्य संस्थाओं के चुनिन्दे तथा नियमानुसार चलने वाले सदस्य हिन्दी रङ्गमञ्च के पात्र बनाये जायें और उसका संचालन योग्य ट्रस्टियों के द्वारा हो। तब तक नटवर जी ने अभिनेता के रूप में ख्याति प्राप्त कर ली थी। उनकी ख्याति देशव्यापी हो रही थी। विश्वामित्र, अर्जुन, शिवाजी, हिरण्यकश्यप, बाजीराव, औरङ्गजेब, अलाउद्दीन, डाकू सरदार आदि की भूकिकाओं में नटवर जी ने अच्छा नाम कमाया था। डी० एल० राय के चन्द्रगुप्त नाटक में चाणक्य की भूमिका में इन्हें असाधारण ख्याति मिली थी।

उक्त नाट्य समिति ने बड़े उत्साह के साथ कार्य आरम्भ किया। दस साल तक यह आन्दोलन बहुत धीमी गति से चलता रहा। कलकत्ता में १९३१ में अखिल भारतीय हिन्दी सम्मेलन का अधिवेशन हुआ जहाँ यह प्रश्न नये सिरे से उठाया गया। 'हिन्दी रंगमच' की स्थापना भी हुई, पर सफलता न मिली। फिल्म के चक्र में सभी जा फंसे। व्यास जी, वेताब जी फिल्मों में चले गये। जब सन् १९३४ में प्रेमचन्द जी के 'मिल-मजदूर' पर फिल्म बनने लगा तब नटवर जी भी उसमें जा फँसे। नटवर जी ने उसमें छोटा-सा पार्ट किया था। शायद बहुतों को पता नहीं होगा प्रेमचन्द ने भी उस फिल्म में सरपंच का अभिनय किया था। फल यह हुआ कि हिन्दी का अपना रंगमच नहीं बन सका। नटवर जी ने मुझसे एक बार कहा था—'उसके संयोजक की हैसियत से मैं १९ साल तक प्रमुख स्थानों का चक्कर लगाता रहा, परिचय निकाले, बैठकें बुलवाईं, पत्र-पत्रिकाओं में आन्दोलन किया, हिन्दी रंगमच के आदर्श पर कई स्थानों पर अभिनय किये और कराये। इससे इतना लाभ अवश्य हुआ कि हिन्दी संसार का ध्यान आकर्षित हुआ। पर उसके बाद ही सन १९३२ ३३ ई० में बोलते बाइस-कोप का बोलबाला हुआ, जिसमे नाटक की दुनिया ही डूब गयी।

श्री ललित कुमार सिंह 'नटवर' का जन्म ज्येष्ठ कृष्ण १५, गुरुवार, विक्रम संवत् १९५५ को हुआ था। यों तो उनकी जन्मभूमि मुजफ्फरपुर है, पर वे शाहाबाद (आरा) जिले

के 'महुआर' गाँव के निवासी हैं। उनके पिता बाबू महादेव सिंह उज्जैन वंशीय क्षत्रिय थे। सन् १८५८ में बाबू कुंअर सिंह के निधन के बाद अंग्रेजों ने उनके साथियों और स्व-जातियों (उज्जैन राजपूतों) पर दमन शुरु किया, तो नटवर जी के दादा महाराज कुमार श्री रामफल सिंह भागकर मुजफ्फरपुर चले आये थे। शाहाबाद जिले में चुरामन कायस्थों का एक प्रसिद्ध गाँव है। वहाँ का अखौरी परिवार भारत विख्यात है। इन पंक्तियों का लेखक उसी परिवार का एक सदस्य है। अखौरी धन्ना जी उसी परिवार के एक अंग हैं। वे केवल धनी-मानी व्यक्ति ही नहीं थे, मित्र वत्सल भी थे। वे अपने मित्रों को, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, गरीब हो या धनी, सभी को समदृष्टि से देखते थे। नटवर जी के दादा रामफल सिंह उनके मित्र थे। अखौरी धन्ना जी के एक सम्बन्धी श्री गजराज सहाय थे, जो श्री श्याम नन्दन सहाय के दादा थे। अखौरी धन्ना जी, गजराज सहाय और श्री रामफल सिंह जी की एक मित्र-मण्डली थी। नटवर जी के पिता श्री महादेव सिंह की बाल्यावस्था में ही शादी हो गई थी, उनकी स्त्री मर चुकी थी। उन्हें कैथी अक्षर का केवल ज्ञान था। उन्हें शिक्षा नाम लिखने भर मिली थी। जवान होते ही नौकरी के लिये वे मुजफ्फरपुर आये। उन्हें गंडकी घाट की घटवाली मिली। इसके बाद अखौरी धन्ना जी, राय गजराज एवं रामफल सिंह की मृत्यु हो गयी। राय गजराज सिंह के इस्टेट की मालकिन राय साहब की दूसरी पत्नी थी। इस बीच एक घटना घटी। एक दिन

अखाड़ा घाट (मुजफ्फरपुर) के निकट एक १४ - १५ वर्षों की एक सुन्दरी लड़की बेहोश पड़ी हुई पायी गयी। श्री महादेव सिंह वहाँ के घटवाल थे ही। लड़की को जब होश हुआ तब रो-रोकर अपनी सारी कहानी उसने महादेव सिंह को सुनायी। उसने बताया कि वे एक शाक्य द्विपीय ब्राह्मण की बेटी है। उसके मामा प्रताप शुक्ल और गणेश शुक्ल मुसलमान हो गये। उसकी विधवा माँ लक्ष्मी को शिवहर महाराजा के खास अरदली मदारू मियाँ से परिस्थिति वश शादी करनी पड़ी। उसकी बड़ी बहन की भी इस प्रकार शादी कर दी गयी। उसने आगे चलकर बताया था कि उसकी शादी एक मुसलमान से तय कर दी गई थी, पर वह हिन्दू है, अतः उसने शादी से इन्कार कर दिया और जिस दिन शादी थी, उस दिन घर के पिछवाड़े से भाग निकली और लगातार ३२-३३ मील भागती हुई मुजफ्फरपुर पहुँची है। श्री महादेव सिंह को उसपर दया आ गई। उसे वे गजराज सहाय की हवेली में लाये। श्री गजराज सहाय की पत्नी ने उसे अपना लिया। उसे सहेली के रूप में अपने साथ उन्होंने रख लिया। बाद में श्री महादेव सिंह से उसकी शादी करा दी। वह महिला नटवर जी की माँ थी; उनका नाम पान कुँअर था। शादी के पूर्व शेख मदारू मियाँ के घर वे खाना खायी हो, पर उनका हिन्दू संस्कार वहाँ भी नहीं बदला था। शादी के बाद तो वे हिन्दू गृहिणी की तरह रहीं। बताया जाता है कि वे कभी भी किसी मुसलमान के घर शादी के बाद खाया-पिया नहीं। उन्होंने कभी भी अभक्ष्य भोजन नहीं किया।

नटवर जी का बचपन का नाम ठग्गा सिंह था। लोअर पाठशाला तक उनका यही नाम लिखा जाता रहा। अपर प्राइमरी स्कूल के हेडमास्टर गोविन्द ठाकुर की कट्टरता ने उनका नाम आप ही लतीफ हुसैन रख दिया। उन्होंने किस अधिकार से एक हिन्दू बालक का नाम मुसलमानी नाम रक्खा, यह समझ में नहीं आता है। ऐसा करने का कोई औचित्य नहीं जान पड़ता। नाम उनका भले ही मुसलमानी रक्खा गया हो, पर समाज उन्हें हिन्दू समझता था। सन् १६१५ के दिसम्बर में नटवर जी के पिता का और सन् १६१६ के अक्टूबर में उनकी माँ का देहान्त हो गया। लतीफ हुसैन के नाम से इन्होंने काफी ख्याति प्राप्त की थी। उन्होंने एक बार अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर आयोजित कवि सम्मेलन में कृष्ण सम्बन्धी भक्तिमयी कविता का पाठ किया था। पं० किशोरी लाल गोस्वामी ने उक्त कविता पाठ सुनकर उन्हें रहीम की उपाधि दी थी। पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने उन्हें रसखान की संज्ञा दी थी, पर उन्होंने अपना उपनाम 'दीन' रखा था। इनकी वह कविता सम्मेलन की 'प्रथम' वर्ग की पाठ्य पुस्तक में कई साल चली। बाद में उन्होंने लाल भगवान दीन के आग्रह से अपना उपनाम 'दीन' छोड़ दिया। पाटलिपुत्र के सम्पादक स्वर्गीय पारसनाथ त्रिपाठी ने बाजीराव का अभिनय करने के कारण पाटलिपुत्र में नटवर कहकर उनका उल्लेख किया था। दीन का अभाव नटवर से पूरा किया।

उन्होंने केवल अपना उपनाम ही नहीं बदला, अपना

नाम भी बदल दिया। उनके माँ-बाप ने उनका नाम ठग्गा सिंह रखा था, उनके शिक्षक ने उनका नाम अनधिकार पूर्ण प्रक्रियाओं से लतीफ हुसैन रख दिया था। लतीफ हुसैन के नाम से पुकारा जाता, उन्हें उचित नहीं जंचता था। वे हिन्दू थे, मुसलमानी नाम से पुकारा जाना उन्हें पसन्द नहीं था। किसी भी हिन्दू से उनका धर्म पर विश्वास और आस्था कम नहीं थी। बचपन से ही वे हिन्दू मन्दिरों में जाते थे, उत्सवों में भाग लेते थे। माता के सदाचार प्रभाव से उनका खान-पान, आहार-विहार, आचार-विचार, तथा वेश-भूषा सब पर हिन्दुत्व की छाप बचपन से ही पड़ी थी, केवल नाम से ही मुसलमान जान पड़ते थे, पर काम से वे हिन्दू थे। आर्य समाजियों ने नटवर जी से शुद्ध करा लेने के लिए आग्रह किया पर शुद्धि-संस्कार को उन्होंने अस्वीकार कर दिया। नटवर जी को मार्मिक दुःख-क्लेश होता है कि उन्हें मुस्लिम समझ कर शुद्ध करने कि चेष्टा क्यों की जा रही है। नटवर जी को पूज्य मालवीय जी और गांधी जी ने हिन्दू नाम रखनें की सलाह दी। अन्त में वे नगर-वासियों की राय पर चलना स्वीकार किया। मुजफ्फरपुर में सभी जातियों (मुसलमान को छोड़कर) के मुखियों की सभा में श्री छवि नाथ पाण्डेय का यह प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ कि नटवर जी का नाम परिवर्त्तन प्रायश्चित संस्कार कराया जाय। सन् १९२५ में सनातन धर्म के अनुसार पं० बजरंग दत्त शर्मा जी उन दिनों हिन्दू महासभा के एक बहुत बड़े नेता थे। उनके आचार्यत्व में नाम परिवर्त्तन प्रायश्चित संस्कार हुआ

और वे राजपूत परिवार में मिला लिए गये। उनका नाम इस प्रायश्चित संस्कार के बाद ठाकुर ललित कुमार सिंह 'नटवर' हुआ। नटवर जी के परिवार में गरीब लोग तक में महाराज कुमार लगाने की प्रथा है। नटवर जी के दादा श्री रामफल जी के नाम के साथ महाराज कुमार ही लगा हुआ था, ठाकुर नहीं लगता था। पर नटवर जी के साथ ठाकुर जोड़ा गया। कई पाठ्य पुस्तकों में इसका उल्लेख है। किन्तु अधिकांश प्रकाशनों में यह भ्रामकता रही है कि– नटवर जी मुसलमान से हिन्दू बनाए गये। आज भी स्थिति से अज्ञात व्यक्ति ऐसा ही समझते हैं। नाम के सिवा, नटवर जी में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

नटवर जी ने कोई शादी नहीं की। सन्तान का कोई प्रश्न नहीं उठता है। अपने भाई जगन्नाथ सिंह के बाल–बच्चे को वे अपना ही बाल-बच्चा मानते हैं। पर उनकी एक सन्तान है। उसे वे बहुत प्यार करते हैं। उनकी उपेक्षा वे किसी भी प्रकार सहन नहीं कर सकते। ७-८ वर्ष पूर्व अनजान में मुझसे उनकी उस सन्तान की उपेक्षा हो गई थी। उन्होंने मेरी बड़ी भर्त्सना की। उनकी यह सन्तान मुजफ्फरपुर की नवयुवक समिति है। उन्होंने मुझे उस अवसर पर लिखा था— नवयुवक समिति को छोड़कर, नटवर का कोई अस्तित्व नहीं है। नटवर जी नवयुवक-समिति के संस्थापक हैं। इस संस्था के पूर्व वे 'बाल-मित्र मण्डली' नाम की एक संस्था चला रहे थे, उसी संस्था को नया रूप देकर उन्होंने नवयुवक समिति को स्था-

पित किया। इस संस्था की स्थापना १६ जुलाई, १६१६ को हुई थी। यह संस्था ५० वर्ष की हुई। नटवर जी ने इसकी रजत जयन्ती मनाई थी। यह समिति इस वर्ष स्वर्ण जयन्ती में प्रवेश कर रही है। इस संस्था का अपना एक इतिहास है। वह बहुत ही रोचक है। स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर 'अयोध्या-मेला' आयोजित किया जाय और नवयुवक समिति के संस्थापक एवं अयोध्या आराधना के प्रेरक शक्ति नटवर जी को सम्मानित किया जाय। अपने मित्र श्री शारदा भण्डारी के सामने मैंने इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव रक्खा है। नवयुवक समिति के अलावे वे अनेक संस्थाओं के जन्मदाता हैं और उनके पोषाक एवं संचालक रहे हैं। उनकी सार्वजनिक सेवाओं का क्षेत्र बहुमुखी रहा है। अतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे लोकप्रिय रहे हैं। बिहार की कोई भी ऐसी सार्वजनिक संस्था नहीं है, जिसके निर्माण में उनका हाथ नहीं है। बिहार में सामूहिक रूप से सेवा समिति उनके ही उद्योग से संगठित हुई थी। सन् १६२० के सितम्बर में बिहार में संचालित सेवा समितियों का एक महासम्मेलन हुआ था। उसी सम्मेलन की प्रसूता बिहार सेवा समिति है; जिसके वे जन्म से ही काफी अर्से तक मंत्री एवं श्रेष्ठ कार्यकर्त्ता रहे।

उन्होंने बिहार में 'बालचर मण्डल' की भी स्थापना की। सन् १६१६ ई० में स्काउटिंग प्रशिक्षण के लिए प्रयाग गये। वहाँ से लौटने के बाद मुजफ्फरपुर में उसी बालचर मण्डल के संचालक में काफी अर्से तक रहे। मुजफ्फरपुर बालचर मण्डल के वे

स्काउट कमिश्नर भी थे। इसके बाद वे प्रान्तीय बालचर मण्डल के नायक रहे। बंगाल बालचर के भी वे एक प्रमुख स्काउटिंग कमिश्नर रहे। आज भी वे सेवा समिति और बालचर संस्था के सहयोग में योग दे रहे हैं। कांग्रेस से उनका सम्बन्ध बहुत पुराना है। यह तब कायम हुआ, जब उन्होंने होश सम्भाली। उन्होंने १६१६ के कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया। बिहार में जब होमरूल (स्वराज्य) का आन्दोलन चला, तब १६१६ में मुजफ्फरपुर में होमरूल (स्वराज्य) की एक शाखा स्थापित हुई। नटवर जी उसके एक प्रमुख कार्यकर्त्ता थे। कार्यकर्त्ताओं को उत्साह देने के लिए ऐनी बेसेन्ट मुजफ्फरपुर में आई थी। होम-रूल आन्दोलन के पश्चात देश में असहयोग आन्दोलन आरम्भ हुआ। सन् १६२१ के नागपुर अधिवेशन के बाद सेवादल की बात तय हुई। ६ अप्रैल, १६१६ के आम हड़ताल, व्यापार बन्द, उपवास, प्रार्थना करने तथा देश में सभा करने का निश्चय किया। मुजफ्फरपुर में यह दिवस बहुत सफलता पूर्वक मनाया गया। सरकार ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था— 'मुजफ्फरपुर में हड़ताल शान्तिपूर्ण एवं ठीक से संगठित की गई थी। उक्त दिवस को सफल बनाने में नटवर जी का बहुत बड़ा हाथ था। आरा में २१ अक्टूबर, १६२१ को प्रांतीय कांग्रेस कमिटी की एक बैठक हुई। उक्त अवसर पर सेवा समितियों के कार्य से सहानुभूति रखने वालों की एक बैठक हुई और उसमें केन्द्रीय सेवा समिति संघ का निर्माण किया गया। नटवर जी उस सेवा-समिति के मन्त्री बनाये गये। नवम्बर १६२१ में इंगलैंड के युवराज जो,

बाद में एडवर्ड अष्टम के नाम से पुकारे गये, वे भारत आये। कांग्रेस ने उनके स्वागत समारोह का वहिष्कार किया। सरकार ने 'स्वयं-सेवक-दल' को 'गैर कानूनी' करार दिया, गिरफ्तारियाँ शुरू कर दी गई। मुजफ्फरपुर में काफी गिरफ्तारियाँ हुई। नटवर जी ने मुजफ्फर में इतने स्वयं सेवक तैयार कर दिया था कि सरकार गिरफ्तार करते-करते थक गई पर स्वयंसेवक कम नहीं हुए। सन् १६३० में जब नमक सत्याग्रह की योजना तैयार हुई, तब नटवर जी जिले के छः सत्याग्रहियों में एक थे। ६ अप्रिल सन् १६३० को तिलक मैदान में आचार्य कृपलानी ने उन्हें तिलक लगाया और वे शिवहर जो नमक-कानून तोड़ने का केन्द्र बनाया गया था, वहाँ वे चल पड़े। वहाँ वे पकड़े गये और उन्हें ६ मास की जेल की सजा भी हुई। इसी प्रकार उन्होंने सन् १६०२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भी भाग लिया।

नटवर जी यह मानते रहे हैं कि हिन्दी के प्रचार और प्रसार के लिए संस्थाओं की आवश्यकता है। उनका साहित्यिक संस्थाओं से बचपन से हो सम्बन्ध रहा है। हिन्दी प्रचारिणी सभा मुजफ्फरपुर एक बहुत ही प्रतिष्ठित संस्था थी। उस संस्था से उनका सम्बन्ध बचपन से ही रहा। सन् १६१३ से सन् १६१८ तक उक्त संस्था के वे पुस्तकाध्यक्ष थे। जब वह संस्था टूट गई, तब उनका सम्बन्ध अन्य संस्थाओं से हो गया। कच्ची उमर में ही नटवर जी ने सन् १६१५ में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रयाग अधिवेशन में भाग लिया था। २० साल तक वे उसकी स्थायी समिति के सदस्य रहे। एक बार वे मंगला प्रसाद

पारितोषिक समिति के सदस्य मनोनीत किये गये थे, जो हिन्दी संसार का गौरवशाली पद है। सन् १६२० के पटना वाले अधिवेशन में उन्हीं की स्वागत-कविता गायी गई थी और हिन्दी कविता पर उनका लेख पसन्द भी किया गया, जो बाद में सम्मेलन की लेख-माला में छापा भी गया। सन् १६२१ के लाहौर-अधिवेशन ने उन्हीं के प्रस्ताव पर नाट्य-उपसमिति का निर्माण किया। सन् १६२४ के वृन्दावन अधिवेशन में इनके द्वारा पढ़ी गई 'स्मृति या विस्मृति' शीर्षक कविता बहु-प्रशंसित हुई। सन् १६२७ के भरतपुर-अधिवेशन में 'राष्ट्रभाषा' पर उनका लेख बहुत सराहा गया। सन् १६२८ का अधिवेशन जो नटवर जी ने ही मुजफ्फरपुर में आमंत्रित किया था। सन् १६३१ के कलकत्ता वाले अधिवेशन में 'हिन्दी रंगमंच समिति' की स्थापना की गई थी। बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तो वे संस्थापकों में है। जब तक सम्मेलन मुजफ्फरपुर में रहा, तब तक नटवर जी उसके प्रमुख संचालकों में रहे। राँची में बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ। उसका सभापति महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन थे। उस अवसर पर एक कवि सम्मेलन हुआ था, उसके अध्यक्ष नटवर जी थे। कवि सम्मेलन के अध्यक्ष पद से उन्होंने जो भाषण किया था, वह भी उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण अंश था। भोगी सम्पादक स्वर्गीय गोपाल सिंह 'नेपाली' ने उस पर टिप्पणी की थी कि 'नटवर' जी के भाषण के सामने स्वयं राहुल जी का भाषण कुछ नहीं था।' नटवर जी सम्मेलन के अध्यक्ष राजनीतिक प्रपंचों के कारण अब तक नहीं हो सके। पर उनकी

महानता में कमी नहीं आयी। वे सम्मेलन के किसी भी भूतपूर्व अध्यक्ष से उनका सम्मान साहित्यिकों के बीच हीन नहीं रहा। सम्मेलन उन्हें अपना अध्यक्ष बनाकर उन्हें नहीं, अपने को गौरवान्वित किया। सम्मेलन की वर्तमान परिस्थिति में वे सम्मेलन के अध्यक्ष होंगे, ऐसी सम्भावना अब नहीं है। नटवर जी ने बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित नाट्य शिक्षण व्याख्यान माला के अन्तर्गत हिन्दी रंगमंच और उसकी अभिनय शैलियों पर एक निबन्ध पाठ किया था। वे मानते हैं कि वह उसका सबसे बड़ा निबन्ध था। सन् १६३८ में नटवर जी कलकत्ता गये। वहाँ भी उन्होंने हिन्दी साहित्य गोष्ठी की स्थापना की। कलकत्ता के जब कुछ साहित्यिकों ने 'बंगाल-हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना किया था। जब अखिल भारतीय सम्मेलन ने उसकी मान्यता प्रदान नहीं किया। उसने वैध रूप से 'बंगाल हिन्दी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना का भार नटवर जी पर सौंपा। इस प्रकार नटवर जी को बंगाल हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना का श्रेय प्राप्त है।

नटवर जी अपने को उच्चकोटि का साहित्यिक नहीं मानते हैं। परन्तु ऐसी बात नहीं है। उन्होंने साहित्य की बड़ी साधना की है। प्रायः १५-१६ वर्ष की अवस्था से ही वे रचनायें करते आ रहे हैं। प्रताप, पाटलिपुत्र, प्रभा आदि पत्रों में वे बराबर लिखते आ रहे हैं। माधुरी, मतवाला, मनोरमा, हिन्दू-पंच, विश्वमित्र, भारत मित्र, अभ्युदय, श्री शारदा, सेनापति में उनके सैकड़ों निबन्ध प्रकाशित हुए थे। उनका साहित्यिक मूल्य

आज भी अधिक है। नटवर जी की निम्नलिखित पुस्तकें उपलब्ध हैं—ललित राग, गुलाब, बाँसूरी और दीपिका। बालचर सम्बन्धी चतुरचर तथा छोटी मुँह बड़ी बात—यह इनके प्रकाशित नाटक है। दाव-पेंच शीर्षक उनका एक कहानी संग्रह भी प्रकाशित है। उन्होंने मुझे बताया है कि अपने निबन्धों का संग्रह भी शीघ्र ही प्रकाशित कराने की योजना बनायी है। आशा है, उक्त पुस्तक के प्रकाशन से हिन्दी की गौरव-वृद्धि होगी। इन पुस्तकों के प्रकाशन के अतिरिक्त उन्होंने कुछ पाठ्य पुस्तका का निर्माण भी किया है। नटवर जी एक सफल पत्रकार भी रहे हैं। 'आशा' 'आलोक' और 'किसान-समाचार' का सम्पादन भी किया है।

नटवर जी फिल्मी दुनिया में 'अजन्ता के मिल-मजदूर' फिल्म द्वारा आये। बाद में फिल्मी दुनिया में होकर बस गये। सन् १९३८ में कलकत्ता की फिल्म कारपोरेशन आफ इण्डिया में भर्ती हुए। 'हरिकीर्तन', आशा, तुम्हारी जीत, औलाद आदि फिल्म में उन्होंने 'खलनायक' का काम किया। इसके बाद उन्होंने न्यू थियेटस में काम किया। वहाँ उन्होंने मीनाक्षा, लगन, सौगन्ध, वापस, छोटेभाई, वसियतनामा, पहला आदमी, हमराही, मसूर, रूप कहानी, नया सफर, चार दोस्त आदि में काम किया है। पर जहाँ तक मुझे अपनी जानकारी है, उससे ऐसा लगता है कि नटवर जी की सबसे बड़ी सफलता 'बन्धन' नामक फिल्म में है। नटवर जी केवल फिल्म अभिनेता ही नहीं है, बल्कि संवाद और गीत लेखक भी हैं।



न्यू थियेटर्स के कई चित्रों के संवाद और गीत भी लिखा है। नटवर जी में एक और कुशलता है कि संवाद को वे नेपथ्य से बोलने की कला जानते हैं। उन्होंने बताया है कि जिस प्रकार नेपथ्य-गायिका या नेपथ्य-गायक दूसरों के बदले गाते हैं, उसी प्रकार वे भी सम्बाद बोलते हैं। हिन्दी डाक्टर के नायक पंकज मल्लिक की आकृति में नटवर जी की आवाज है।

नटवर जी ऐसे गौरव-पुरुष को हम आज सम्मानित कर अपने आपको सम्मानित कर रहे हैं। अपनी संस्था को हम सम्मानित कर रहे हैं। भगवान उन्हें और लम्बी आयु दें ताकि वे हम लोगों का मार्ग-प्रदर्शक करते रहें।



राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह

आज हिन्दी का उपन्यास साहित्य बहुत धनी है ! उस पर हम सबों को गौरव है। कुछ ऐसे भी उपन्यास आज हमारे पास हैं, जिनको लेकर हम विश्व के रङ्ग मञ्च पर खड़ा हो सकते हैं। हमें विश्वास है कि हम वहाँ बौना नहीं लगेंगे। यह कोई अभिमान की बात नहीं है, यह गौरव की बात है। पर पहले यह बात नहीं थी; हमारे यहाँ उपन्यास था ही नहीं। उपन्यास साहित्य सूना-सूना सा लगता था। पाठक निराश भरे शब्दों में कहा करते थे—हिन्दी में उपन्यास ही कहाँ है, जो पढ़ा जाय। हमारे साहित्यकार इसके लिये चिन्तित थे। भारतेन्दु जी ने एक उपन्यास लिखना आरम्भ किया था, पर उसे उन्होंने पूरा नहीं किया। यही कहा जाता है कि—भारतेन्दु जी ने नाट्य-कला की ओर जो ध्यान दिया, जो विकसित किया, वह उनका ध्यान उपन्यास साहित्य की ओर नहीं गया। कुछ आलोचक तो यह मानते हैं कि भारतेन्दु जी ने उपन्यास साहित्य को विकसित करने की चेष्टा नहीं की। इसका फल यह हुआ कि उन्होंने उपन्यास साहित्य को वह गौरव प्रदान नहीं किया, जो गौरव उन्होंने नाट्य-साहित्य के लिये किया। यह काम तो द्विवेदी-युग में आरम्भ हुआ। प्रेमचन्द, प्रसाद और राजा राधिकारमण—इन उच्च मूर्तियों को पाकर हिन्दी साहित्य निहाल हो उठा। खेद की बात है कि हमारे

बीच आज न प्रेमचन्द हैं और न प्रसाद जी ही; पर हमारे बीच उस परम्परा में केवल राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ही रह गये हैं।

राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह कला-साहित्य को गौरवान्वित करने के लिये प्रसाद जी के साथ साहित्य क्षेत्र में उतरे थे। सम्वत् १९६८ में प्रसाद जी की ग्राम नामक कहानी उनके मासिक पत्र इन्दु में निकली थी। वह हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी मानी जाती है। उसके बाद सम्वत् १९५० में 'इन्दु' में ही राजा साहब की एक अत्यन्त भावुकता पूर्ण कहानी 'कानों में कँगना' शीर्षक छपी थी। आचार्य रामचन्द्र शुल्क ने अपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में इन्ही कहानियों से हिन्दी कहानी का प्रारम्भ काल माना है।

राजा राधिका रमण प्रसाद का जन्म १५ नवम्बर सन् १८९१ ई० में बिहार प्रान्त के एक उच्चतम कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके यहाँ सरस्वती और लक्ष्मी दोनों एक साथ निवास करती हैं। साधारणतः सरस्वती और लक्ष्मी—दोनों एक साथ नहीं रहती है। दोनों के स्वभाव में मौलिक भेद है। पर सम्पूर्ण राज घराने में रहने के लिये दोनों बहनों ने समझौता कर लिया है। ऐसी परिस्थिति और ऐसी परम्परा बहुत कम ही दिखायी पड़ती है। राजा साहब को साहित्य एवं सम्पदा—दोनों वंश परम्परा से मिली है। उनकी वंश परम्परा की कहानी डुमराँव राज्य की दीवानी से सम्बन्धित है। राजा साहब

के पितामह दीवान श्री रामकुमार सिंह बहुत ही सुसंस्कृत और साहित्य-प्रेमी व्यक्ति थे। वे ब्रजभाषा के उच्चकोटि के कवि भी थे। उनके दरवार में कवियों और गुणियों का बहुत सम्मान किया जाता था। पूरे देश में साहित्यिक सूर्य्य पूरा दरवार में आकर उनके द्वारा सम्मानित हुए थे। उनकी कुछ कविताएँ आज भी उपलब्ध हैं, जिन्हें उन्होंने कुमार के नाम से लिखा था। राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह के पिता स्वर्गीय राजा राजेश्वरी प्रसाद सिंह 'प्यारे' सुकवि थे, वे भारतेन्दु युग के प्रतिनिधि कवि थे। 'प्यारे' कवि भारतेन्दु और कविन्द्र रवीन्द्र के परम मित्र थे। भारतेन्दु की रीति कालीन प्रवृत्तियों से वे बहुत ही प्रभावित थे। उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रसिद्ध नाटिका 'चित्रांगदा' का हिन्दी अनुवाद, कवीन्द्र के साथ रहकर किया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर से उनका पारिवारिक सम्बन्ध सा हो गया था। राजा साहब को भी उनका पुत्रवत स्नेह प्राप्त था। राजा साहब स्वयं यह मानते हैं कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की स्नेह छाया में उनकी साहित्यिकता का नवीन पौधा खिला था। आचार्य शिवपूजन सहाय ने राजा साहब को गद्य-कवि के रूप में ग्रहण किया था। राजा साहब का गद्य-कवि का रूप कवीन्द्र रवीन्द्र की ही देन है। यह गौरव के साथ राजा साहब स्वीकार करते हैं।

राजा साहब के छोटे भाई कुमार राजीव रंजन प्रसाद सिंह अंग्रेजी के धुरन्धर विद्वान थे, उनके घर का नाम 'मुनमुनजी' था। वे तीन बार बिहार प्रादेशिक एसेम्बली के सदस्य निर्विरोध

चुने गए थे। सन् १६२६ ई० में वे जगदीशपुर के प्रतिष्ठित जमीन्दार को बाबू हीरा जी को हराकर एसेम्बली के सदस्य हुए थे। सन् १६३० तक वे इम्पिरियल एसेम्बली के भी सदस्य रहे। सन् १६३६ में वे बिहार कौंसिल के सभापति चुने गये। सन् १६४२ में उन्हें सर की उपाधि मिली थी। राजा साहब और कुँअर साहब का भ्रातृ-स्नेह राम और लक्ष्मण के तुल्य था। राजा साहब की पत्नी ललिता देवी उनकी साहित्यिकता को सदैव प्रेरणा देती रहती थी। शोक है, आज दोनों ही दुर्लभ हैं। उनका अभाव राजा साहब को सदैव खटकता है। श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह और श्री उदय राज सिह राजा साहेब के दो पुत्र हैं। दोनों सुयोग्य हैं। राजेन्द्र प्रसाद सिंह कौंसिल आफ स्टेट के सदस्य हैं और उदय राज जी 'नईधारा' के सम्पादक हैं। इतना ही नहीं, उदय राज जो वर्त्तमान पीढ़ी के प्रतिनिधि कलाकार हैं। उनकी 'भूदानी सो नीच' की गणना हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासों में होती है। राजा साहेब को इस बात का जितना गौरव है कि वे भारतेन्दु युग के गौरवशाली कवि राजा राजेश्वरी प्रसाद सिंह प्यारे के पुत्र हैं, उतना ही शान उन्हें इस बात की भी है कि वे वर्त्तमान पीढ़ी के प्रतिनिधि कथाकार श्री उदयराज जी के पिता भी हैं। उनके अनुज पुत्र श्री कृष्णराज सिंह भी एक सफल कलाकार हैं।

राजा साहब का जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था, जहाँ फारसी की बोल वाला थी। सभी लोगों की शिक्षा फारसी

से ही आरम्भ हुई थी, पर उनके पिता और पितामह ने अध्ययन कर हिन्दी और संस्कृत की शिक्षा ही नहीं पायी थी, प्रत्युत अपने हाथों से हिन्दी की गौरव वृद्धि भी की है। घर में राजा राधिकारमण प्रसाद को फारसी के साथ-साथ संस्कृत की शिक्षा भी दी जाने लगी। आगे इण्ट्रेन्स पास करने के बाद प्रश्न यह आया कि राजा साहब उच्च कक्षाओं में संस्कृत पढ़े या फारसी दोनों विषय, राजा साहब के लिए सामान्य थे। अगर दोनों विषय एक साथ लेने की परिपाटी होती, तो राजा साहेब दोनों ही विषय लेते। इन दोनों विषयों में कौन सा विषय लें, जब वे यह निर्णय नहीं कर पाये, तब उन्होंने पांसा द्वारा इसका निर्णय कराया। संस्कृत के पक्ष में पांसा निकाला। उन्होंने सस्कृत ले ली, पर वे घर पर फारसी पढ़ते रहे। वे सन् १९०७ में इन्ट्रेन्स पास कर सेण्ट जिवियर्स कालेज कलकत्ता में पढ़ने गये। इसी बीच उनके पिता का देहान्त हो गया। दोनों भाई नाबालिग थे, अतः रियासत कोर्ट आफ वार्ड्स के अधीन चली गई। राजा साहब का अभिभावक आरा का कलक्टर बना।

अंग्रेजी सरकार ने इनकी शिक्षा के लिए श्री नन्द कुमार लाल को अभिभावक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया। कलकत्ता में रहते हुए उनका सम्बन्ध एक पड़ोसी अंग्रेज परिवार से हो गया। उस परिवार में एक क्रिश्चयन लड़की थी, जिसका नाम मिन्नी था। राजा साहब का इस परिवार से मिन्नी को

लेकर ही परिचय बढ़ा था, पर यह राजा साहब के लिए अच्छा नहीं हुआ। मिन्नी पर इस अंग्रेज परिवारमें बहुत अत्याचार होता था। राजा साहब उससे सहानुभूति रखते थे। पड़ोसी अंग्रेज की आँखों के वे काँटा हो गये। वह भारतीयों को घृणा की दृष्टि से देखता था। उसने राजा राधिका रमण सिंह के विरूद्ध आरा कलक्टर के पास एक संवाद भेजा कि राजा राधिका रमण क्रान्तिकारी दल के साथ सम्पर्क रखते हैं। फिर क्या था; आरा का कलक्टर जाँच पड़ताल करने के लिए कलकत्ता आ पहुंचा। उसे जाँच से यह पता चला कि वे अरविन्द के वन्दे मातृरम्' पत्र के नियमित रूप से पाठक हैं। अरविन्द के भाषण सुनने के लिए सभास्थल में वे जाते; अतः उन्हें २४ घन्टे के अन्दर कलकत्ता छोड़ने का आदेश हुआ। उन दिनों वे बी० ए० के छात्र थे। उन्हें पढ़ने के लिए आगरा भेजा गया। बाद में इलाहाबाद में पढ़ने लगे। जिस साल उन्होंने बी.ए. में नाम लिखाया था। उस साल फारसी पढ़ने वाले लड़कों की संख्या १०० थी और संस्कृत पढ़ने वालों की संख्या १० थी। राजा साहब ही एक कायस्थ थे, जिन्होंने संस्कृत ले रखी थी। सन् १९१२ में वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के बी० ए० की परीक्षा में सर्व प्रथम आये थे। कलक्टर नहीं चाहता कि वे आगे पढ़े। अतः कलक्टर ने उन्हें उनके ही राज्य का सहायक कलक्टर नियुक्त कर दिया। कुछ दिनों के बाद वे उस राज्य का मैनेजर बना दिये गये। स्वाभिमानी राजा साहब के लिए यह स्थिति सहनीय नहीं

थी। पर राजा साहेब के लिए दूसरा कोई चारा भी नहीं था। ऐसी स्थिति में रहकर उन्होंने एम० ए० की परीक्षा प्राइवेट रूप में पास कर ली।

हम ऊपर बता चुके हैं कि जब राजा साहेब कलकत्ता में रहते थे, तब उनका सम्पर्क रवीन्द्र नाथ ठाकुर से हो गया था। रवि बाबू के परिवार में वे घुल-मिल से गये थे। इस सम्बन्ध में ऐसा हुआ कि राजा साहब का बंगला साहित्य से सम्पर्क स्थापित हो गया। रवि बाबू की प्रेरणाओं से बंगला में लिखने लगे। राजा साहब बंगला में लिखते थे, बाद में वे हिन्दी के लेखक हुए। उन्होंने १६०८, १६०६ और १६१० तक बंगला में काफी लिखा। बंगला पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ काफी प्रकाशित हुई थीं। बंगला के साथ ही साथ वे उन दिनों अंग्रेजी में भी लिखते थे। उनके बंगला और हिन्दी के निबन्धों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा हुई थी। रवि बाबू ने उनकी प्रारम्भिक बंगला की रचनाओं को देखकर कहा था—' उनकी रचनाओं को देखकर, यह पता नहीं चलता है कि वे बंगला भाषा-भाषी नहीं हैं। उन्हें विश्वास था कि राजा साहेब बंगला में लिखते रहे, तो कुछ ही दिनों में उनकी गणना बंगला साहित्य के श्रेष्ठ गद्यकारों में होगी। पर बंगला में लिखने की प्रवृत्ति उनकी कम हो गई और हिन्दी में लिखने लगे। फल यह हुआ कि राजा साहब बंगला साहित्य का श्रेष्ठ गद्यकार नहीं हो सके। पर राष्ट्रभारती के उपन्यास सम्राट हो गये। हिन्दी संसार ने उन्हें उपन्यास - सम्राट की उपाधि दी है। ऐसा

एक विशेष कारण के चलते हुआ। बंगला - साहित्य पर अनुरक्त राजा राधिका रमन का सम्बन्ध उन दिनों हिन्दी के कर्मठ साहित्यकार आचार्य शिवपूजन सहाय से हो गया। शिवपूजन बाबू ने देखा कि राजा साहब में साहित्यकता कूट-कूट कर भरी है। राजा साहब की लेखनी में उन्होंने शक्ति और सौंदर्य्य दोनों का दर्शन किया। शिवपूजन बाबू ने राजा साहब का ध्यान हिन्दी की ओर आकर्षित किया। फिर क्या था, राजा साहब के हृदय में हिन्दी के लिए स्रोत फुट पड़ा। उनकी लेखनी हिन्दी के नव-निर्माण में लग गयी। उन्होंने उन दिनों हिन्दी में एक उपन्यास लिखा, जिसका नाम 'नव-जीवन है। उन्होंने कुछ कहानियाँ भी लिखीं जो गल्प-पुष्पांजलि के नाम से प्रकाशित हुई। उनकी कहानियों से मौलिक कहानियों का मौलिक युग भी मान सकते हैं।

बचपन में जो साहित्य का अनुराग राजा साहब में देखा गया था, उस अनुराग में रियासती कार्यों के कारण कुछ गति-रोध आ गया। सन् १९१५ में आरा के कलक्टर ने उन्हें उनके रियासत का सहायक मैनेजर नियुक्त किया। सन् १९१७ में रियासत के मालिक वे बनाये गये। उन्हें राजा की उपाधि भी दी गई। राज्य-कार्य से उन्हें बहुत ही कम अवकाश मिलता था। इस कारण साहित्यकारों की उनसे जो आशाएँ थी, वह पूरी नहीं हो रही थी। फिर भी उन्होंने उस व्यस्थ जीवन में उन दिनों 'तरंग' नामक उपन्यास लिखा।

रियासत के कामों से उन्हें बहुत ही उलझा रहना पड़ता

था, पर देश की कुछ ऐसी परिस्थिति थी, जिनसे उन्हें अवकाश निकालना ही पड़ता था। उन्हीं दिनों उन्होंने हरिजनोद्धार आन्दोलन का भी संचालन किया था। सुधारवादी जिला परिषदों का जब निर्माण हुआ तब से उसमें भी हाथ बँटाने लगे। आरा के अंग्रेज कलक्टर यह नहीं चाहता था कि–राजा साहेब जिला परिषद् के चेयरमैन हों। उनके विरोधों के बावजूद भी राजा साहेब जिला-परिषद् के अध्यक्ष हुए। सन् १६२४ में महात्मा गान्धी आरा आये हुए थे। शाहाबाद जिला-परिषद् ने यह निश्चय किया कि शाहाबाद जिला-परिषद् की ओर से उन्हें मानपत्र अर्पित किया जाय। कलक्टर ने इसका विरोध किया। राजा साहब ने कलक्टर के विरोध की परवाह नहीं की और उन्होंने गान्धी जी को मानपत्र दिया।

बचपन में जो साहित्यिक अनुराग उनके हृदय में उत्पन्न हुआ था, वह समयाभाव के कारण कुछ दबा-सा रह गया। सन् १६३५ में उनके वक्ष पर एक ऐसी चोट पड़ी, जिससे वह साहित्यानुराग विशाल रूप में प्रस्फुटित हुआ। बताया जाता है कि सन् १६३५ में डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा के साथ एलफिस्टन सिनेमा में एक अंग्रेजी फिल्म देख रहे थे। वह फिल्म लैकेरे के 'वन्टिकेयर' के आधार पर बना था। फिल्म देखने के बाद डाक्टर सिन्हा ने राजा साहब से कहा कि 'वेन्टिकेयर' के समान उपन्यास हिन्दी में नहीं लिखा गया है। उन्होंने राजा साहेब से हिन्दी के अन्धकारपूर्ण भविष्य की

ओर संकेत किया। सिन्हा साहब के इस कथन से राजा साहब को बहुत चोट पहुँची। राजा साहब ने निश्चय कर लिया कि वे हिन्दी में वैसी पुस्तकें लिखेंगे। इसके बाद शीघ्र ही उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'राम रहीम' प्रकाशित हुआ। राम रहीम की भूमिका में उन्होंने कहा है "....चन्द विलायती संस्कृति के हिमायती दोस्तों ने हिन्दी की खिल्ली उड़ानी शुरू की।...उनकी दलील थी कि हिन्दी जबान की भित्ति पर साहित्य की कोई आलीशान इमारत कभी खड़ी नहीं हो सकती। डोस्टोवस्की और टाल्स्टाय, ह्यूगो और बैलजाक, डिकिन्स और थैकरे के आलमगीर नॉवेलों के मुकाबले हिन्दी की कृतियाँ कभी आँख सीधी कर सकती हैं ? आखिर इस भाषा की बिसात ही क्या है ? अभी दुधमुँही बच्ची है–महज दो चार हाथ फुदकने लगी है, कहीं यूरोपीय व्योम बिहारी उड़ाकों के पहलू में पर मार सकती है ? विश्व साहित्य के अखाड़े में यह अगला कदम तक रोप ही नहीं सकता है, ताल ठोंकना तो दूर रहे।" राजा साहब को यह तोताचश्मी बेहद खली। उन्होंने फौरन कलम अजामा दिया। राम-रहीम हमारे सामने ही नहीं, विश्व साहित्य के सामने आया। राम रहीम व्यंग्यात्मक उपन्यास है और इस कारण हिन्दी क्या, सम्पूर्ण विश्व-साहित्य के उपन्यासों में उस उपन्यास को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। राम रहीम के बाद उनके निम्नलिखित उपन्यास और भी निकले—(१) पुरुष और नारी (२) टूटातारा (३) नारी क्या एक पहेली ? (४) पूरब और

पश्चिम (५) सूरदास (६) संस्कार (७) चुम्बन और चाँटा। इन्हीं उपन्यासों को लिखकर उन्होंने उपन्यास सम्राट की उपाधि पाई है।

राजा साहब की लेखनी केवल उपन्यास-कला तक ही सीमित नहीं है। उन्होंने सैकड़ों कहानियाँ भी लिखी हैं। उनकी कहानियों का आधार हमारा समाज है। समाज की प्रत्येक समस्याओं का समाधान उपस्थित करने का प्रयास उन्होंने अपनी कहानियों में किया है। उनके कई कहानी संग्रह भी निकले हैं, (१) हवेली और झोपड़ी (२) गाँधी टोपी (३) सावनी समाँ (४) देव और मानव आदि। उन्होंने नाटक भी लिखे हैं। नाटक लिखने की प्रवृत्ति उन्हें बचपन से ही थी, जब इलाहाबाद-विश्वविद्यालय में पढ़ते थे तब उन्होंने एक नाटक लिखा था। उस नाटक का नाम था—'नए रिफोर्मर'। उस नाटक को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के तत्कालीन वाइसचांसलर सर गंगानाथ झा ने बहुत पसन्द किया था। उन्हीं की प्रेरणा से वह सन् १९१२ में अभिनीत भी हुआ था; जिसमें बिहार के एडवोकेट जनरल महावीर प्रसाद ने भी अभिनय किया था। राजा साहब ने इधर दो नाटक और भी लिखे हैं—(१) एक का नाम 'धर्म की धुरी' (२) तथा दूसरे का नाम 'अपना और पराया। राजा साहब ७५ वर्ष पार कर चुके हैं फिर भी उनकी लेखनी नवयुवकों की लेखनी से तेज चलती है। नवयुवकों में यह ईर्ष्या होने लगी है कि—राजा साहब किस प्रकार इतना

लिखते हैं। उनकी लेखनी को देखकर ऐसा लगता है कि राजा साहब अभी भी नवयुवकों का हृदय रखते हैं। इन दिनों राजा साहब 'जानी-सुनी-देखी' पुस्तकमाला लिखने में व्यस्त हैं। इस पुस्तकमाला के अन्तर्गत वे अपने जीवन के संस्मरणों को लिख रहे हैं, जो हिन्दी की अमूल्य निधि है।

हिन्दी साहित्य में आज भी जितने साहित्यकार हैं, उनमें राजा साहब ही एक ऐसे साहित्यकार हैं जिनका साहित्यिक सम्मान बहुत ही कम उम्र में हुआ था। जब वे केवल २६ वर्ष के थे, तब बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष हुए थे। यह सम्मान कोई छोटा सम्मान नहीं था। आज महेश नारायण साहित्य शोध संस्थान उन्हें सम्मानित कर अपने आपको सम्मानित कर रहा है।

आचार्य बदरी नाथ वर्मा

सन्ताल परगना जिला हिन्दी भाषा भाषी होते हुए भी एक दिन ऐसा था कि इस जिले के लोगों को हिन्दी पढ़ने की सुविधा नहीं थी। हिन्दी पढ़ने के लिए उन्हें बाहर जाकर पढ़ना पड़ता था। जिला परिषद् के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री राम सहाय लाल जी ने एक बार मुझे बताया था कि उनका नाम देवघर के आर० मित्रा स्कूल में इसलिए नहीं लिखा गया कि वे हिन्दी पढ़ना चाहते थे और वहाँ हिन्दी पढ़ाने की कोई व्यवस्था ही नहीं थी। यह स्थिति पूरे इस जिला में थी। पढ़ाई कि स्थिति यह थी और दूसरी ओर सन्ताल जातियों में ईसाई मिशनरियों के द्वारा देवनागरी लिपि के स्थान में रोमन लिपि का प्रचार हो रहा था। सम्मेलन का ध्यान इस ओर गया। पर सम्मेलन की ओर से सन्तोषजनक काम नहीं हुआ। सन् १९२४ ई० में बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने सन्ताल परगना की स्थिति पर विचार किया। सम्मेलन ने सन् १९२० में इस क्षेत्र में काम करने का संकल्प किया था। मार्ग में दो कठिनाइयाँ थीं-कर्मठ व्यक्तित्व और अर्थ। सम्मेलन ने अपने पाँचवें अधिवेशन में इस कार्य को अपने कर्मठ नेता आचार्य श्री बदरी नाथ वर्मा को दे दिया और उसके लिए अर्थ की व्यवस्था का भार स्वयं डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने लिया। आचार्य बदरीनाथ वर्मा के नेतृत्व

में हिन्दी प्रचार का काम इस जिले में आरम्भ हुआ। अच्छा काम हुआ। बाद में यह काम एकादश सम्मेलन के एक प्रस्ताव द्वारा पाँच आदमियों की एक उपसमिति को सौंपा गया, जिसके नियोजक श्री बुद्धिनाथ झा 'कैरव' बनाये गये। आचार्य बदरी नाथ वर्मा--यह मानते हैं कि हिन्दी का प्रचार केवल नारा देने से नहीं हो सकता है। हिन्दी-प्रचार के लिए रचनात्मक कार्य करना होगा। जहाँ हिन्दी की पढ़ाई की व्यवस्था नहीं है वहाँ होनी चाहिए। उन दिनों सरकार अपनी तो थी नहीं, जो सरकार थी, उसकी नीति हमारी नीति से भिन्न थी। सरकार के सामने हम प्रस्ताव रख सकते थे, पर उस प्रस्ताव के अनुकूल काम करना कठिन था। उन्हीं के देखरेख में सिंहभूम जिला में हिन्दी का प्रचार-कार्य आरम्भ हुआ। हिन्दी के कई प्राइमरी स्कूलों की स्थापना करायी गई। रामायण-मंडलियों के द्वारा हिन्दी-प्रचार का काम भी हुआ था। पर अर्थाभाव के कारण आचार्य जी जैसा चाहते थे, वैसा काम नहीं हुआ। जब वे बिहार के शिक्षा मंत्री हुए थे, तब उन्होंने हिन्दी प्रचार के लिए सम्मेलन को सरकार की ओर से आर्थिक अनुदान दिलवाया था। उसी अनुदान से सम्मेलन ने एक सौ से अधिक स्कूल मानभूम में खोला था। बाद में सरकार ने अनुदान देना बन्द कर उन स्कूलों को स्कूलों के जिला इन्सपेक्टर के अधीन कर दिया। आचार्य बदरी नाथ वर्मा, बहुत ही श्रद्धा के साथ आचार्य जी कहलाते हैं। बिहार में आचार्य जी कहने से बदरी बाबू के

नाम का बोध होता है। एक पत्रकार ने सन् १६४६ में उनके सम्बन्ध में लिखा था, सभी वर्ग एवं सभी सम्प्रदाय के द्वारा बिहार में तीन ही व्यक्ति को लोकप्रियता प्राप्त है। वे हैं— डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा, डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद और आचार्य बदरीनाथ वर्मा। एक दूसरे पत्रकार ने सन् १६४६ से १६५२ के मन्त्रिमण्डल के कार्यों पर अपना विचार व्यक्त किया था कि कांग्रेस सरकार के अन्दर श्री बाबू हृदय हैं, अनुग्रह बाबू उसकी शक्ति हैं और बदरी बाबू इस कांग्रेसी सरकार के दिमाग हैं। हमारे दुर्भाग्य से आज न तो डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा हैं, न डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद हैं, और न रहे श्री बाबू और न रहे अनुग्रह बाबू। भगवान की कृपा से हमारे मार्ग दर्शन के लिए आज उस पीढ़ी के एक मात्र व्यक्ति जो रह गये हैं—वे हैं आचार्य बदरीनाथ वर्मा। वे हमारे स्वतंत्रता संग्राम के एक अमर सेनानी रहे हैं। राष्ट्र-भाषा का जो आन्दोलन बिहार में चला – इसका भी नेतृत्व उनके हाथों में रहा था। ५० वर्ष पूर्व उन्होंने अपना जीवन साहित्य, समाज एवं शिक्षा के लिए अर्पित किया था और देश-सेवा को अपने जीवन का उन्होंने व्रत बनाया था। आज भी वे अपने व्रत पर अटल हैं। विपरीत परिस्थितियों के बीच रहकर भी उन्होंने अपने संकल्पों को पाला है।

महात्मा गान्धी ने 'नयी शिक्षा' की योजना जब देश के सामने 'वर्धा शिक्षा प्रणाली' के नाम से रक्खा, तब बदरी बाबू

ने उसका स्वागत किया। उन्होंने उस आदर्श योजना को एक व्यावहारिक रूप दिया। महात्मा गान्धी ने स्वयं बदरी बाबू की प्रशंसा की थी। पूना में सन् १९४७ में शिक्षा मन्त्रियों की एक सभा हुई थी। महात्मा गान्धी ने उसका उद्घाटन किया था। बापू ने मुक्त कण्ठ से बदरी बाबू का उल्लेख करते हुए कहा था—बिहार ही एक प्रदेश है, जहाँ सन् १९३७-३९ में वर्धा शिक्षा योजना प्रयोग में लाई गई थी, वह योजना वहाँ सफलता पूर्वक चलती रही। आचार्य जी ने बिहार में इस योजना को ठोस रूप से चलाया था। बम्बई और संयुक्त प्रदेश में भी यह योजना चलाई गई थी। कांग्रेसी मन्त्रिमंडल के त्याग के बाद बम्बई और संयुक्त प्रदेश में वह योजना बन्द कर दी गई, पर बिहार में वह चलती रही। 'वर्धा शिक्षा-प्रणाली' का आधार भूत सिद्धान्त है—शिक्षा द्वारा 'आत्म-निर्भरता'। भारतीय सरकार के सुप्रसिद्ध शिक्षा अधिकारी डाक्टर जौन सर्जन को जहाँ उक्त शिक्षा प्रणाली की 'आत्म निर्भरता' के प्रति आशंका थी, वहीं आचार्य बदरी बाबू को उस शिक्षा प्रणाली की 'आत्म-निर्भरता' में बड़ी आस्था है। आचार्य जी चाहते हैं कि हमारे लोगों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए, जिसे पाकर वह जीवन से संघर्ष कर सकें। किसी कार्यालय में नौकरी नहीं पाने के कारण वह अपने को असहाय न मानें। उसे तो शिक्षा ऐसी मिलनी चाहिए कि वह अपनी शिक्षा से समाज का उत्पादक सदस्य बने और उसमें ऐसी शक्ति आये कि वह सारी विपरीत शक्तियों से संघर्ष कर सके। शिक्षा का उनका यही आदर्श है;

इस आदर्श को उन्होंने व्यावहारिक रूप देने का कार्य किया है।

आचार्य बदरीनाथ वर्मा का जन्म १०वीं नवम्बर, १८८६ में एक प्रतिष्ठित कायस्थ परिवार में नालन्दा के निकटवर्ती मेर्धानवा गाँव में हुआ था। उनके पिता श्री कालीचरण वर्मा जी थे। वर्मा जी के अभिभावक छोटानागपुर में रहते थे, इस कारण उनकी शिक्षा-दीक्षा छोटानागपुर में हुई। १६ वर्ष की आयु में रांची जिला स्कूल से सन् १६०७ में उन्होंने इन्ट्रेंस की परीक्षा पास की। सेन्ट कलौम्बस कालेज, हजारीबाग में कालेजी-शिक्षा प्राप्त करने के लिए उन्हें दाखिल किया गया। आई० ए० परीक्षा पास करने के बाद सन् १६०८ में वे कलकत्ता गये। वहाँ उन्होंने प्रेसीडेन्सी कालेज में नाम लिखाया। वहीं से सन् १६१० में बी० ए० किया। अंग्रेजी लेकर सन् १६१२ में उन्होंने एम० ए० किया। २२ वर्ष की आयु में शिक्षा समाप्त कर उन्हें जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ा। उन दिनों प्रतिभाशाली नवयुवक अधिकांश रूप में वकालत-पेशा में लग जाते थे। आचार्य जी को वकालत-पेशा से कोई विशेष अभिरुचि नहीं थी। सरकारी नौकरी करने की प्रवृत्ति नहीं थी। उनमें तब तक देशभक्ति की भावना उत्पन्न हो चुकी थी। कलम की ओर झुकाव होने के कारण उन्होंने पत्रकारिता को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। 'भारत मित्र' नामक कलकत्ता के हिन्दी दैनिक में वे काम करने लगे। कुछ दिनों के अन्दर उन्होंने अपना स्थान 'भारत मित्र' सम्पादक मण्डल में बना लिया। अपनी प्रतिभा का प्रयोग करने का वहाँ उन्हें समुचित अवसर

नहीं मिलता था। अतः वे पत्रकारिता को छोड़कर बी० एन० कालेज में प्रोफेसर के पद पर काम करने लगे। वहाँ उन्होंने ६ वर्ष तक सफल प्रोफेसर के रूप में काम किया। महात्मा गान्धी ने असहयोग-आन्दोलन के क्रम में शिक्षकों से सरकारी स्कूल और कालेज से त्याग-पत्र देने को कहा तथा बदरी बाबू बी० एन० कालेज से पदत्याग कर बाहर आये। सन् १६२० में जब बिहार विद्यापीठ की स्थापना हुई, तब बिहार विद्यापीठ के प्रथम रजिस्ट्रार बदरी बाबू बनाये गये। राष्ट्रमूर्ति राजेन्द्र प्रसाद जी के प्रथम प्रिन्सिपल बनाये गये थे। उनके बाद बदरी बाबू उसके प्रिन्सिपल बनाये गये। बिहार विद्यापीठ के प्रति बदरी बाबू की ममता बहुत है। उसे वे सन्तान-सा मानते हैं। जब वे शिक्षा मन्त्री थे तब उसे विकसित करने के लिये सरकार के सामने योजना रक्खी थी। सरकार से उसके संचालन के लिये उन्होंने अनुदान भी दिया था। आचार्य बदरीनाथ वर्मा का कांग्रेस से सम्बन्ध बहुत पुराना है। विद्यार्थी जीवन से ही कांग्रेस के प्रति उनको अनुरक्ति थी। सार्वजनिक जीवन में आने के बाद वह तीव्रसे तीव्रतर हो गई, कांग्रेस के वे कोषाध्यक्ष बनाये गये। लोगों में सेवा की भावना भरने के लिए १२ सितम्बर, १६१८ को एक बैठक बदरी बाबू कीअध्यक्षता में हुई। इलाहाबाद सेवा समिति के अनुरूप बिहार में एक सेवा समिति की अनिवार्यता पर विचार किया गया और उसे गठित करने के लिए चार आदमियों की एक समिति गठित की गई। आचार्य जी उसमें एक थे। जब गया कांग्रेस का अधिवेशन

हुआ तब उस समय स्वयं सेवक दल के वे प्रमुख सेनापति थे। वे स्वतन्त्रता संग्राम के हमारे अजय सेनानी रहे हैं।

आचार्य जी का सार्वजनिक जीवन पत्रकारिता से आरम्भ हुआ है। सन् १९२१ में उन्होंने 'देश' में काम करना आरम्भ किया। 'देश' को राजेन्द्र बाबू ने राजनीतिक आन्दोलन के लिए निकाला था। जनजागरण को लक्ष्य में रखकर बदरी बाबू ने इसका सम्पादन आरम्भ किया। १० वर्ष तक उसका सम्पादन किया। बहुत अंग्रेज अधिकारियों को हिन्दी इसलिए पढ़ना पड़ा कि वे देश को पढ़ सकें। देश के बन्द हो जानें के बाद मुरली बाबू के सन् १९३० में जेल चले जाने के बाद बदरी बाबू को 'सर्चलाइट' के सम्पादन का भार दिया गया। सर्चलाइट का सम्पादन कार्य उन्होंने सन् १९४२ की अगस्त क्रान्ति तक किया। वे जेल में ही थे कि सर्चलाइट की व्यवस्था बिड़ला ब्रदर्स के हाथों में चली गई। उन्होंने हजारीबाग जेल में ही निश्चय किया कि वे सर्चलाइट में जेल-मुक्त होने के बाद कार्य-भार ग्रहण नहीं करेंगे। उन्हें सर्चलाइट की व्यवस्था परिवर्त्तन पर खेद था। सर्चलाइट पर उनका बहुत स्नेह था। संघर्ष के बीच में रहकर उसे उन दिनों उनलोगों ने चलाया था। जब वे सर्चलाइट में काम करते थे, तब उन्हें दिल्ली के एक पत्र 'नेशनल काल' में काफी रुपया देकर सम्पादक का पद सौंपा जा रहा था, पर सर्चलाइट छोड़कर वे वहाँ नहीं जा सके। उन दिनों बदरी बाबू की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। फिर भी 'सर्चलाइट' से उनका जो अपनापन हो गया था, उसे

वे किसी मूल्य पर नहीं छोड़ सकते थे।

बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन से बदरी बाबू का सम्बन्ध आरम्भ से ही रहा। मैं अपने मित्र उमानाथ जी से सहमत हूँ कि जिस प्रकार अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन को राजर्षि टंडन जी ने पाला है—विकसित किया है, उसी प्रकार बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन को आचार्य बदरी नाथ वर्मा ने पाला है, विकसित किया है, नष्ट होने से बचाया है। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि सम्मेलन का ऐसा कोई कार्य नहीं है, जिसमें आचार्य जी का हाथ नहीं हो। सम्मेलन के गया अधिवेशन की अध्यक्षता उन्होंने की और उक्त अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष बिहार विभूति डाक्टर अनुग्रहनारायण सिंह थे। गया अधिवेशन के पूर्व प्रान्तमें सरकार द्वारा गठित भाषा सम्बर्धिनी समितिकी रिपोर्टसे विषाक्त वातावरण पैदा हो गया था। सन् १९२६ के अन्त में इस कमिटी ने अपना आरम्भिक काम समाप्त कर सर्वसाधारण की सम्मति जानने के लिए आरम्भिक रिपोर्ट प्रकाशित की। उस कमिटी ने यह सिफारिश की थी कि हाई इंगलिश स्कूलों की कुछ उच्च कक्षाओं के सभी बिहारी छात्रों को अनिवार्य रूप से हिन्दी और उर्दू पढ़ाई जाय और सरकारी कचहरियों में देवनागरी लिपि के साथ-साथ फारसी लिपि के व्यवहार की आज्ञा बिहार सरकार दे। इन सिफारिशों का बिहार की हिन्दी जनता ने घोर विरोध किया। आचार्य बदरीनाथ वर्मा ने गया अधिवेशन में अपने अध्यक्ष पद से अपने भाषण में विस्तृत रूप से इसकी आलोचना की थी और समिति की सिफारिशों का तर्क

पूर्ण ढंग से खण्डन किया था। सन् १९४१ में सम्मेलन के पटना अधिवेशन में जिसमें आचार्य शिवपूजन सहाय अध्यक्ष थे, वे उसके स्वागताध्यक्ष थे। उस समय इस प्रदेश में हिन्दी और हिन्दुस्तानी का प्रश्न उठ खड़ा हुआ था। अधिवेशन के उद्घाटनकर्त्ता पूज्य डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी थे; जो हिन्दुस्तानी के समर्थक थे और अधिवेशन के अध्यक्ष आचार्य शिवपूजन सहाय जी थे, जो हिन्दी के कट्टर समर्थक थे। सम्मेलन के आदमियों में भी दो दल हो गया था। हमलोग हिन्दुस्तानी के विरोधी थे। भाषा के साथ किसी प्रकार का खेलवाड़ हमलोगों को पसन्द नहीं था। सम्मेलन के नवयुवक वर्ग में सहमति थी। वे किसी प्रकार का समझौता नहीं चाहते थे। शिव जी का उन्हें आशीर्वाद प्राप्त था। गया कांग्रेस में स्वराज्य के प्रश्न को लेकर कांग्रेस में जो विभेद दृष्टिगोचर हुआ था, वही विभेद सम्मेलन में हिन्दुस्तानी के समर्थकों और हिन्दुस्तानी के विरोधियों में था। आचार्य बदरीनाथ वर्मा सिद्धान्त से हमलोगों के साथ थे। पर राजेन्द्र बाबू और सम्मेलन के अन्य सात सदस्यों की जो हिन्दुस्तानी के समर्थक थे—उन्हें साथ लेकर चलने को हम लोगों को उन्होंने राय दी। उन्होंने एक मध्य की राय व्यक्त की। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने सम्मेलन के पत्र 'साहित्य' को सन् १९३७ में निकाला। आचार्य जी उसके सम्पादक बने। उनका सम्बन्ध अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन से भी रहा है। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपने तृतीय कलकत्ता अधिवेशन में, जो सन् १९१२ में हुआ था एक प्रस्ताव पारित कर हिन्दी के लेखकों से अनुरोध किया था कि हिन्दी साहित्य के

भण्डार भरने के लिए सभी लेखक कम से कम एक पुस्तक लिखें, तो हिन्दी का बहुत बड़ा कल्याण होगा। प्रस्ताव में मौलिक और अनुवादित दोनों प्रकार की पुस्तकों पर जोर दिया गया था। उस प्रस्ताव को दृष्टि में रखकर आचार्य जी ने विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के ग्रन्थ 'समाज' का हिन्दी रूपान्तर किया। आचार्य जी ने लिखा बहुत है, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनके निबन्ध बिखरे पड़े हैं। राष्ट्रभाषा-परिषद् या सम्मेलन उनके निबन्धों को संकलित कर प्रकाशित करें। सम्मेलन ने अपने पालक के नाम पर बदरीनाथ सर्वभाषा विद्यालय चला कर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्त्ति की है। उसे ही उनके निबन्धों का संकलित कर प्रकाशित करना चाहिए।

आचार्य जी बहुत बड़े शिक्षाशास्त्री हैं। उनकी राय है कि लोगों को समुचित शिक्षा दी जाय, तो कानून और व्यवस्था की समस्या आप से आप हल हो जा सकती हैं। वे शिक्षा-प्रणाली में महान् परिवर्तन चाहते हैं। वे शिक्षा का आधार नैतिकता मानते हैं। बिहार शिक्षा पुनर्गठन समिति, बिहार बेसिक बोर्ड शिक्षा परिषद्, बिहार संस्कृत शिक्षा पुनर्गठन समिति आदि समितियों में उन्होंने अपने सुझाव रख कर शिक्षा नीति में परिवर्तन करने की चेष्टा की है। जब वे बिहार के शिक्षा मन्त्री हुए तब उन्होंने शिक्षा के विकास और विस्तार पर यथेष्ठ ध्यान दिया। आधुनिक बिहार के इतिहास में पहले, पहल शिक्षा-क्रम को सुव्यवस्थित बनाने का प्रयत्न किया गया। प्राइमरी, मिडूल और हाई स्कूलों के पाठ्य क्रम में व्यापक

रूप से संशोधन और परिवर्तन किये गये। आचार्य बदरीनाथ वर्मा ने स्वयं स्वीकार किया था— 'पुरानी शिक्षा-प्रणाली को पूरी तरह बदलने में स्वभावतः बहुत समय लगेगा, पर, उस दिशा में कार्यारम्भ कर दिया गया है। आशा है, भविष्य में शिक्षा प्राप्त कर जो छात्र जीवन-प्रवेश करेंगे, वे समाज के लिये बोझ स्वरूप न होंगे। संख्या और परिमाण की दृष्टियों से भी शिक्षा का बहुत अधिक प्रसार हुआ है। आचार्य जी ने पटना विश्वविद्यालय और बिहार विश्वविद्यालय विधेयक को पारित करा बिहार की उच्च-शिक्षा के इतिहास में एक नवीन अध्याय का श्रीगणेश किया है। पटना विश्वविद्यालय में उनके ही प्रभावों के फलस्वरूप प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, राजनीति विज्ञान, प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति, शारीरिक सांख्यायिक, श्रम और सामाजिक कल्याण, संगीत, भूगर्भ विद्या, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध तथा कानून के विभाग खोले गये। इसी प्रकार पटना साइन्स कालेज में प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, बनस्पति शास्त्र, जन्तुविज्ञान तथा भूगर्भ विज्ञान के नये विभाग खोलने में उन्होंने अपनी उदारता दिखलायी है। बिहार के चार अनुशीलन प्रतिष्ठानों में भी उनकी देन है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, काशी प्रसाद जायसवाल अनुशीलन प्रतिष्ठान, मगध प्रतिष्ठान, और मिथिला प्रतिष्ठान—आचार्य की सबसे बड़ी कृतियाँ है। इन चारों में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् का स्थान अत्यन्त प्रमुख है। इसके कार्यक्रम में, हिन्दी भाषा और साहित्य के गवेषणात्मक ग्रन्थों के प्रकाशन, लोक-साहित्य के

संकलन, महत्वपूर्ण ग्रन्थों के लिये पुरस्कार प्रदान, अन्य भाषाओं के महत्वपूर्ण ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद का समावेश है। आज भी वे विश्वविद्यालय की अनुदान समिति के उपाध्यक्ष हैं।

इन शब्दों को उनके सम्मान में निवेदन कर मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि इस महान पुरुष को शतायु बनायें।

श्री सांवलिया बिहारी लाल वर्मा

यह जानकर आश्चर्य होता है कि अंग्रेज सरकार ने सन् १८३७ में राजकीय भाषा विधेयक के द्वारा बिहार की मातृ-भाषा फारसी लिपि के माध्यम से लिखी हुई भाषा को स्वीकृत किया था। पर यह स्थिति सत्य पर आधारित थी। सन् १८३७ से १८८१ के बीच की अवधि में हमारे नेता ने यह आन्दोलन किया था कि बिहार की मातृभाषा हिन्दी है और हमारी लिपि देवनागरी है। उन लोगों के प्रयास से अंग्रेजी सरकार ने सन् १८८१ में यह स्वीकार किया कि बिहार के लोगों की मातृभाषा हिन्दी है और उसकी लिपि नागरी है। सन् १८८१ से १६१६ के बीच नागरी से अधिक कैथी लिपि का ही प्रचार रहा। कैथी लिपि नागरी का ही विकृत रूप है। डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन ने कैथी लिपि में सुधार कर सर्वगुण आगरी नागरी की भांति उसे सभी प्रकार से सुन्दर बनाया। उन्होंने कैथी लिपि के टाइपों को ढलवाया। आरा नागरी प्रचारिणी सभा के प्रयास से सन् १६१६ में पूर्णरूप से बिहार की कचहरियों में नागरी लिपि का प्रवेश हो गया। सन् १६२० से फारसी लिपि के समर्थकों ने एक आंदोलन आरम्भ कर दिया। पत्र-पत्रिकाओं में निबन्ध लिखे जाने लगे। फारसी लिपि के सम्बन्ध में यह कहा जाने लगा कि बिहार राज्य में हिन्दू और मुसलमानों की सामान्य लिपि फारसी है। डाकवर

में मुसलमानों को फारसी लिपि का व्यवहार करने का अधिकार प्राप्त है। रजिस्ट्रेशन कार्यालय में फारसी लिपि व्यवहृत होती है। कौंसिल की कार्रवाई फारसी लिपि में भी छापी जाती है। फारसी लिपि में कम खर्च पड़ता है। उतना ही नहीं, उनका यह दावा था कि फारसी के वे शब्द जो कानूनी शब्द बन गये हैं, वे नागरी अक्षरों में उतर नहीं पाते। इन सब बातों को दृष्टि में रखकर सन् १६२३ और सन् १६२५ में प्रस्ताव कौन्सिल में लाया गया था। सन् १६२३ में सरकार की ओर से स्पष्ट कह दिया गया था कि फारसी लिपि को पुनः प्रवेश करने का कोई औचित्य नहीं है। सन् १६२५ में डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा ने विभिन्न पहलुओं पर विचार प्रकट करते हुए फारसी लिपि के औचित्य का खण्डन किया था। भाषा शास्त्रियों के लिए सिन्हा साहब का उक्त अवसर पर दिया हुआ भाषण पठनीय है। फारसी लिपि कचहरी की लिपि नहीं हो सकती है, यह बतलाते हुए डाक्टर सिन्हा ने कहा हमारा प्रदेश भारत के सभी प्रदेशों से अधिक बहुभाषी और बहुलिपिक प्रदेश है। जनगणना सबंधी रिपोर्ट देखने से पता चलता है कि बिहार में जितनी भाषा और लिपि का प्रयोजन होता है. उतना अन्य किसी प्रदेश में नहीं होता है। सिद्धान्त के रूप में अगर हम फारसी लिपि को स्थान देते हैं, तो अन्य लिपियों को भी स्थान देना होगा। काफी वाद-विवाद के बाद उक्त प्रस्ताव पर मत लिया गया। प्रस्ताव के पक्ष में १७ मत मिले और उसके विरोध में ४६ मत। प्रस्ताव के रद्द किए जाने से मुसलमानों में बहुत क्षोभ उत्पन्न

हुआ। आन्दोलन को दूसरा रूप दिया गया। सन् १६२५ ई० में बिहार कौंसिल में सूर्य्यपुरा के कुमार सर राजीवरंजन सिंह ने बिहार की भाषाओं की उन्नति के लिये एक भाषा सम्वर्द्धिनी समिति बनाने का प्रस्ताव लाया। प्रस्ताव पारित हो जाने के बाद सरकार ने भाषा सम्बर्धिनी समिति श्री अली इमाम की अध्यक्षता में गठित की। उस समिति ने जो सिफारिशें की, वे सभी हिन्दी हित की दृष्टि विघातक थीं। उस समिति ने यह राय प्रकट की थी कि सरकारी कचहरियों में देवनागरी लिपि के साथ-साथ फारसी लिपि के व्यवहार की आज्ञा बिहार सरकार दे।

बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने भाषा सम्बर्द्धिनी समिति की सिफारिशों के विरोध में एक आन्दोलन खड़ा किया। उस आन्दोलन का नेतृत्व एक ऐसे व्यक्ति के हाथों में सौंपा गया, जो डाक्टर सच्चिदानन्द के ग्राम के निवासी थे। कौंसिल में डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा के चलते फारसी लिपि का प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ। कौंसिल के बाहर भाषा सम्बर्द्धिनी समिति ने फारसी लिपि को लादना चाहा था। सिन्हा साहब के ग्रामवासी साँवलिया बिहारी लाल वर्मा के नेतृत्व में सम्मेलन ने उस समिति की सिफारशों के विरोध में आन्दोलन करने का निश्चय किया। उन्हीं की अध्यक्षता में १० नवम्बर, १६२७ को सम्मेलन का विशेष अधिवेशन सम्पन्न हुआ। उस अधिवेशन में समिति की सिफारिशों की कड़ी आलोचना की गई। साँवलिया जी ने अपने भाषण में विस्तृत रूप से फारसी

लिपि की माँग की आलोचना की और समिति की सिफारिशों का मुँहतोड़ जवाब दिया। उन्होंने कहा था—'बिहार में मुसलमानों की संख्या १९२१ की जनगणना के अनुसार आबादी के १०–१२ प्रतिशत से अधिक नहीं है, जिसमें पढ़े-लिखे मुसलमानों की संख्या ०·७५ प्रतिशत से अधिक नहीं है। बिहार के मुसलमानों में भी ऐसे बहुत कम मिलेंगे जो फारसी-लिपि से पूर्ण परिचित हों। देहात में तो बिरला ही कोई मुसलमान प्रचलित उर्दू-भाषा के दस प्रतिशत शब्दों को भी समझ पाता है।' इतना ही नहीं आगे चलकर वर्मा जी ने कहा था—'इस्लाम संस्कृति की रक्षा के लिए उर्दू-भाषा या फारसी लिपि का सम्बन्ध कायम करना एकमात्र दुराग्रह है, क्योंकि दक्षिण भारत, बंगाल, महाराष्ट्र तथा गुजरात में उर्दू-भाषा और फारसीलिपि के बिना भी इस्लाम संस्कृति कायम है और वह फल-फूल रही है। वहां मुसलमान उर्दू समझे बिना और फारसी लिपि के व्यवहार बिना भी मुसलमान बने हुए हैं।' वर्मा जी ने वैज्ञानिक दृष्टि से भी फारसी लिपि का विरोध किया था। उनके अनुसार फारसी लिपि ध्वनि की दृष्टि से अवैज्ञानिक है। उन्होंने सम्मेलन के मंच से कहा—'आवाज के ख्याल से फारसी के कुछ हरुफ़ ऐसे हैं जो आपस में बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। उदाहरणार्थ, साद और सीन, जाद और जो को सुनकर आसानी से यह नहीं समझा जा सकता है कि इन अक्षरों के उच्चारण वाले शब्द किस हर्फ में लिखे जायेंगे। नतीजा यह होता है कि काफी गलदियाँ हो जाती हैं और सही न

लिखने वाला नालायक समझा जाता है।' बर्मा जी ने मुसलमानों द्वारा फारसी लिपि की मांग को अनुचित माँग कहा था और अन्त में उन्होंने सरकार को चेतावनी देते हुए कहा था—'यह तो सिर्फ मुट्ठी भर साम्प्रदायिक भावना से परिपूर्ण मुसलमानों को प्रसन्न करना और उनकी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को प्रोत्साहन देना कहा जायेगा, जो देश के लिये कल्याणकारी न होगा।'

साँवलिया बिहारीलाल वर्मा के सफल नेतृत्व में सम्मेलन ने प्रान्त व्यापक भाषा सम्बर्द्धिनी समिति के विरोध में एक आन्दोलन आरम्भ किया। प्रान्त व्यापी आन्दोलन करने के लिये ११ व्यक्तियों की एक समिति बनाई गई। प्रान्त भर में सार्वजनिक सभायें हुई; हिन्दी भाषी जन साधारण से हस्ताक्षर कराकर शिक्षा मन्त्री के पास भेजा गया। इस आन्दोलन के चलते बिहार सरकार ने भाषा सम्बर्द्धिनी समिति की रिपोर्ट को अस्वीकृत कर दिया। मेरी दृष्टि में सम्मेलन की यह सब से बड़ी सफलता रही है। सम्मेलन की इस सफलता में भी साँवलिया बिहारीलाल वर्मा का कम श्रेय नहीं है। उनकी अध्यक्षता में हुआ सम्मेलन के अधिवेशन के संकल्पों को दृष्टि में रख कर यह आन्दोलन हुआ था। सम्मेलन ने अपने विशेषाधिवेशन का अध्यक्ष बनाकर उनके सर पर आन्दोलन का सेहरा रख दिया था।

श्री साँवलिया बिहारीलाल वर्मा का जन्म १८ जून, १८६६ ई० को छपरा में हुआ था। उनके पिता जी स्वर्गीय श्री मथुरा

प्रसाद जी एकमा गाँव में उन दिनों रजिस्ट्रार थे। उनके चाचा श्री बाँके बिहारीलाल छपरा के एक प्रमुख वकील थे। श्री वर्मा जी कायस्थों के प्रतिष्ठित गाँव मुरार के रहने वाले हैं। आधुनिक बिहार के बापू डाक्टर सच्चिदानन्द सिंह के परिवार के वे हैं। उनके चचेरे भाई बिहार के सुप्रसिद्ध डाक्टर रघुनाथ शरण के पितामह छपरा में वकालत करते थे। उनके अनुज, जो साँवलिया बाबू के पितामह थे—वे भी छपरा में वकालत करते थे। सन् १८५७ के सिपाही विद्रोह में साँवलिया बिहारीलाल वर्मा का मुरार का पारिवारिक घर नष्ट हो गया। उसके बाद उनका परिवार छपरा नगर में रहने लगा। वर्मा जी के परिवार की गणना बिहार के प्रतिष्ठित कायस्थ परिवारों में होती है। आधुनिक बिहार के बापू डाक्टर सच्चिदानन्द सिन्हा वर्मा जी के ही परिवार के हैं। राधा स्वामी मत के पूज्य गुरु 'सरकार साहब' भी उनके ही परिवार के थे। भारत ख्याति प्राप्त गणितज्ञ डाक्टर गणेश प्रसाद, हिन्दी निर्देशालय, दिल्ली के निर्देशक, एक सुविख्यात भाषाशास्त्री डाक्टर विश्वनाथ प्रसाद, बिहार के सुप्रसिद्ध डाक्टर रघुनाथशरण आदि उनके चचेरे भाई हैं।

श्री साँवलिया बिहारीलाल वर्मा की शिक्षा सन् १६०५ के बाद ही समुचित रूप से आरम्भ हुई। वे अपने पिता जी के साथ अधिकतर रहा करते थे। सरकारी नौकरी में रहने के कारण उनकी बदली होती रहती थी। सन् १६०४ में उनकी बदली छपरा में हुई और सन् १६०५ के आरम्भ में वर्मा जी को

छपरा स्कूल के आठवें वर्ग में दाखिल कराया गया। सन् १९०८ में पिता जी की बदली के कारण उन्हें मोतिहारी जिला स्कूल में एकवर्ष पढ़ना पड़ा। सन् १९०९ में उन्हें मुजफ्फरपुर जिला स्कूल में दाखिल कराया गया। वहीं से उन्होंने १९१४ में मैट्रिक की परीक्षा पास की। सन् १९१५ ई० में पटना कालेज के आइ० ए० क्लास में वे भर्ती हुए। सन् १९१८ में बी० ए० परीक्षा पास की और सन् १९२० में एम० ए० की परीक्षा अर्थशास्त्र लेकर पास की। उन्हें विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ था। विद्यार्थी जीवन से ही उनका सार्वजनिक जीवन आरम्भ हो गया था। राष्ट्रमूर्ति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने बिहार स्टुडेन्ट कान्फरेंस की स्थापना की थी। वह देश में अपने ढंग को एकमात्र संस्था थी। उससे वर्मा जी का सम्बन्ध हो गया था। उन्हीं दिनों उनमें हिन्दी के प्रति अनुराग पैदा हुआ था। वह अनुराग आगे चलकर विशाल रूप में प्रकट हुआ।

वर्मा जी का साहित्यिक जीवन स्वर्गीय रामधारी प्रसाद, स्वर्गीय शिवपूजन सहाय एवं स्वर्गीय श्री पारस नाथ त्रिपाठी के साथ आरम्भ हुआ। ७० वर्ष की आयु में भो उसी तत्परता से वे साहित्य सेवा करते हैं, जो उन्होंने ४० वर्ष पूर्व किया था। मुझे तो ऐसा लगता है कि इधर ८ १० वर्षों में उन्होंने साहित्य को जो चीजें दी हैं, वे हिन्दी के लिए अमर देन हैं और उनके चलते उन्होंने हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपना स्थान बना लिया है। उनके साहित्यिक उपदानों पर पूरे बिहार को

गौरव प्राप्त है। उनकी प्रकाशित कृतियों का नाम इस प्रकार है—प्रथम महाभारत (१६१५), गद्यचन्द्रिका, गद्यचन्द्रोदय, लोक सेवक महेन्द्र प्रसाद, विश्वधर्म दर्शन; बद्री-केदार-यात्रा, इस्लाम की झाँकी; दो आदर्श भाई, दक्षिण भारत की यात्रा, रामेश्वर यात्रा और अन्तर्राष्ट्रीय विधि। भारत सरकार ने उनकी अन्तर्राष्ट्रीय विधि नामक पुस्तक सन् १६६५ में प्रकाशित की है। अपने विषय की वह हिन्दी की पहली पुस्तक है। दो आदर्श भाई शीर्षक पुस्तक में राष्ट्रमूर्ति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद और उनके अग्रज लोक सेवक श्री महेन्द्र प्रसाद जी की जीवन-कहानी है। पढ़ने में ऐसा लगता है कि वह जीवनी ग्रन्थ नहीं है, एक कहानी का ग्रन्थ है। हिन्दी में यात्रा सम्बन्धी पुस्तकों का अभाव है। वर्मा जी ने उसकी पूर्ति की है। वर्माजी ने अपना जीवन-संस्मरण लिखा है। योगी के दस अंकों में उसका कुछ अंश छपा है। लोगों ने उसको काफी पसन्द किया है। उनकी निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित होने की प्रतीक्षा में है—(१) गीता का समन्वय भाष्य (१६० पृष्ठों का) (२) चालीस उपनिषदों का भाष्य, (३) भारत के विभिन्न क्षेत्रों का यात्रा-विवरण (४) भारत में मूर्तिपूजा का आरम्भ और विकास, (५) स्वर्गीय राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद (६) व्यक्तिक अन्तर्राष्ट्रीय विधान आदि। इन पुस्तकों के प्रकाशन से हिन्दी साहित्य का और गौरव बढ़ेगा—ऐसा मेरा विश्वास है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इधर उनके कई महत्वपूर्ण रचनायें प्रकाश में आई हैं की जिनमें निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—'हिन्दी में वैदिक

साहित्य', 'हिन्दी में पुराण', 'रामायण और महाभारत की रचना पद्धति', 'व्यक्तिक अन्तर्राष्ट्रीय विधि', 'मिथला का प्राचीन गौरव', 'शाक्त उपनिषद', 'जन्मान्तर', 'गीता के कुछ गूढ़ स्थल', 'हिन्दी में प्राप्य उपनिषद् और उनकी उपयोगिता', 'श्री राधावाद का आरम्भ और विकास'।

वर्मा जी को साहित्यिक संस्था के प्रति बड़ी ममता है। उनका साहित्यिक संस्थाओं से सम्बन्ध भी है। उनका सम्बन्ध अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पुस्तकालय संघ एवं राष्ट्रभाषा परिषद से विशेष रूप से रहा है। उन्होंने कई संस्थाओं को जन्म भी दिया है। सन् १९१३ में वर्मा पुस्तकालय तथा नवयुवक समिति; छपरा में नाट्य परिषद; सारन जिला साहित्य सम्मेलन तथा सीतामढ़ी में श्री मथुरा प्रसाद स्मारक गीता भवन, रामायण देवी स्मारक धार्मिक पुस्तकालय, सीतामढ़ी आदि उनके द्वारा स्थापित हैं। इतना ही नहीं वर्मा जी बिहार विधान परिषद और बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के मान्य सदस्य रहे हैं। इन दिनों वर्मा जी मुजफ्फरपुर जिला साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष एवं बिहार लॉ कमीशन के सदस्य हैं।

वर्मा जी केवल साहित्य-साधक ही नहीं हैं; वे कर्मठ कांग्रेस कर्मी हैं। उनकी गणना राजनीतिज्ञों में भी होती है। भ्रमण से उनको विशेष अभिरुचि रही है। भारत में शायद ही कोई तीर्थ स्थान या दर्शनीय स्थान होगा जहाँ वे नहीं गये हैं। काश्मीर तथा बद्रीनाथ की तीन बार यात्रा वे कर चुके हैं। सुदूर अमरनाथ तथा गंगोत्री की भी यात्रा उन्होंने की है। वे मानते भी हैं

कि आरम्भ से ही यात्रा, पुस्तक संग्रह और पठन ये तीनों अभि-रूचियाँ उन्हें रही हैं।

वर्मा जी चाहते हैं कि हिन्दी सबकी भाषा बनकर रहे। विधान ने जो स्थान उसे दिया है, उसके अनुरूप वह रहे। वह इतनी सुगम और सरल हो कि अहिन्दी भाषी जनता उसे अपना सके। भारतीय संस्कृति से उन्हें विशेष स्नेह है। यही कारण है, समय-समय पर हिन्दी पाठकों में भारतीय संस्कृति का अनुराग उत्पन्न करने के लिए वे संस्कृति मूलक निबन्ध लिखते रहते हैं। भगवान से प्रार्थना है कि वे हमारे बीच युगों तक रह कर हमें बल और शक्ति देते रहें!

आचार्य श्री मनोरंजन प्रसाद सिंह

हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने का प्रयास विदेशी लेखकों ने आरम्भ किया। इनके इतिहास ग्रन्थों में बहुत से ऐसे साहित्यिक आने से रह गये हैं, जिनके अभाव में इतिहास ग्रन्थों को पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती। पर उन इतिहासकारों के सम्बन्ध में यह कहकर हम सन्तोष कर लेते हैं कि वे सब विदेशी थे, उन्हें जानकारी नहीं थी। उनके अज्ञान ने उनके इतिहास ग्रन्थों को अपूर्ण बना दिया है। बाबू श्यामसुन्दर दास, मिश्र बन्धु एवं पं० रामचन्द्र शुक्ल ने जब इतिहास लिखना आरम्भ किया, तब लोगों को आशा हुई कि अंग्रेज लेखकों से जो भूलें रह गयी हैं, उनका उनके द्वारा सुधार हो जायेगा। पर आशा पूरी नहीं हुई। उन लोगों ने भी बहुत से ऐसे साहित्यकारों को स्थान नहीं दिया, जिन्हें उन्हें देना था। उनलोगों से बड़ी-बड़ी भूलें रह गयी हैं जो लज्जाजनक हैं, खेद जनक भी हैं। भारतेन्दु और द्विवेदी युग के अधिकांश साहित्यकारों को उन इतिहासकारों ने देखा था, कई से उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध भी था; पर उन्होंने उन्हें भुला दिया। स्पष्टवादिता अगर दोष नहीं मानी जाय तो हम यह कह सकते हैं कि जानकर ही अनेक साहित्यकारों की उनलोगों ने उपेक्षा की है। यही कारण है, हमें यह कहना पड़ता है कि हिन्दी साहित्य का इति-

हास अधूरा है, अपूर्ण है। वह असंगतियों से भरा हुआ है। हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने में एक तांता बँध गया है। साल में दो-चार ग्रन्थ अवश्य ही प्रकाशित होते हैं पर खेद की बात है कि मिश्र बन्धु, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल एवं डाक्टर श्याम सुन्दर दास के इतिहास को ही आधार मानकर आज भी इतिहास लिखा जा रहा है। यही कारण है, उन लोगों से जो छूट गये हैं, वे अब तक छुटे ही हैं और वे तब तक छुटे ही रहेंगे जबतक चार ग्रन्थों को सामने रखकर पाँचवाँ ग्रन्थ तैयार करने की हमारी प्रवृत्ति नहीं जाती।

हमारे साहित्यकारों के साथ किसी भी हिन्दी साहित्य के इतिहासकार ने यथोचित न्याय नहीं किया है। यह केवल मेरा अपना ही विचार नहीं है। यह शिकायत पहले भी हमारे साहित्यकार पूर्वजों ने की है। आचार्य श्री मनोरंजन प्रसाद सिंह ने बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के १८ वें मोतीहारी अधिवेशन में खुले शब्दों में कहा था—'हिन्दी के अबिहारी इतिहासकारों ने बिहार की जिस प्रकार अवहेलना की है, उसे देखकर दुःख होता है।' उन्होंने उदाहरण के रूप में अयोध्या प्रसाद खत्री और खड्गविलास प्रेस का उल्लेख किया है। अयोध्या प्रसाद खत्री को जब मैंने जमीन के नीचे से उखाड़ा तब हिन्दी संसारमें एक भूकम्प आ गया। किसी ने उन्हें हिन्दी का गान्धी माना, किसी के अनुसार वे हिन्दी के तिलक थे, कुछ ने बताया वे दयानन्द थे, एक ने तो उन्हें हिन्दी का चाणक्य तक माना था,

पर पं० रामचन्द्र शुक्ल ने उनका अपने इतिहास में एक भद्दा चित्र दिया है। क्षोभ के साथ मनोरंजन बाबू ने कहा है—'वर्त्तमान हिन्दी पद्य में' आज जिस खड़ी बोली का बोलबाला है, उनके लिए पहले-पहल शोर मचाने वाले बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री जी बिहार के ही थे। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में उनका मजाक-सा उड़ाया है।' पर मनोरंजन बाबू को इस बात का संतोष है कि धुनी लोगों का इस प्रकार मजाक उड़ाया जाना कोई नयी बात नहीं है और उन्हें इस बात का विश्वास है कि 'हिन्दी साहित्य खत्री जी की सेवा को भूल नहीं सकता और उन्हें एक नये आन्दोलन के प्रवर्त्तक के रूप में सदैव याद करेगा। बिहार को सदा इस बात का नाज होगा।' भारतेन्दु-साहित्य पर उत्तर प्रदेश जो नाज करता है, उसका भी सारा श्रेय मनोरंजन बाबू के शब्दों में बिहार को है। उन्होंने कहा है—'यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि यदि बिहार के खड्गबिलास प्रेस का सहारा भारतेन्दु बाबू को नहीं मिला होता तो आज शायद हम उनके ग्रन्थों का पता नहीं पाते और उससे हिन्दी-साहित्य को जो जबर्दस्त धक्का पहुँचता, उसका अनुमान नहीं किया जा सकता है। बिहार को इस बात का गर्व है कि उसने भारतेन्दु-साहित्य की रक्षा की।' मनोरंजन बाबू के अनुसार बिहारियों की उपेक्षा इस लिए हुई है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास किसी बिहारी ने नहीं लिखा। बिहार के विद्वानों से वे कहा भी करते हैं,—'हिन्दी साहित्य का प्रमाणिक इतिहास वे लिखें। यही एक मार्ग रह गया है।

आचार्य शिवपूजन सहाय के जब इतिहास का प्रथम खण्ड प्रकाश में आया तब उन्हें बड़ा ही सन्तोष हुआ। जब शिवपूजन जी का देहान्त हुआ, तब उन्हें सब से अधिक दुःख यह हुआ था कि इतिहास लिखने का जो कार्य उन्होंने आरम्भ किया था, वह अब पूरा न हो सकेगा।

मनोरंजन बाबू यह मानते हैं कि अमुक इतिहास लेखक ने बिहार के लोगों की उपेक्षा की है, इतना कहने से काम नहीं चल सकता; प्रमाणिक बातें, प्रामाणिक ढंग से कहने पर उन्होंने जोर दिया है। उन्होंने कहा भी है–'हिन्दी के अबिहारी इतिहासकारों ने बिहार की जिस प्रकार अवहेलना की है, उसे देखकर दुःख होता है अस्तु; आवश्यक है कि हमारा प्रादेशिक सम्मेलन अथवा पटना विश्वविद्यालय अपने तत्वावधान में हिन्दी-साहित्य का एक प्रामाणिक इतिहास तैयार करावे, जिसमें किसी की भी अकारण अवहेलना न होने पावे और हमारे नवयुवक अपनी साहित्यिक प्रगति का ठीक-ठीक अध्ययन कर सकें।

आचार्य श्री मनोरंजन प्रसाद का जन्म कार्तिक कृष्ण द्वितिया, संवत् १९५७ वि० को हुआ है। ऐसे तो वे राजा राधिका रमण सिंह के ग्रामवासी हैं। वे भी शाहाबाद जिला के अन्तर्गत अवस्थित सूर्य्यपुरा के रहने वाले हैं। पर उनके पूर्वज डुमराँव में रहने लगे हैं। उनके पिता का नाम बाबू राजेश्वर प्रसाद था। वे एक बड़े पद पर थे। वे जज थे। मनोरंजन बाबू के

सभी भाई भी बड़े-बड़े पदाधिकारी थे। सरकारी पदाधिकारियों का जो वातावरण होता है वह भी अंगरेजों के समय का, उसी वातावरण में मनोरंजन बाबू पले, उनका शैशव कटा; पर उसका उन पर प्रभाव नहीं पड़ा। कहा जाता है, बालक को जिस वातावरण में रख दिया जाय, उस पर उसका रंग चढ़ जाता है, पर मनोरंजन बाबू का रंग एक है, उस पर दूसरा रंग नहीं चढ़ा। बचपन में ही उन्होंने अपने सजीव आचरण का परिचय दिया।

मनोरंजन बाबू की शिक्षा की व्यवस्था बहुत ही समुचित ढंग से की गई। इनके परिवार में सभी पढ़े-लिखे व्यक्ति थे, अतः उनकी शिक्षा का श्रीगणेश ठीक-ठीक रीति से हुई। उचित समय पर उनकी शिक्षा आरम्भ हुई। घर पर ही उनकी प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था हुई, बाद में अपने गाँव के स्कूल में भरती हुए। ग्राम्य पाठशाला से शिक्षा पाकर वे अपने पिता के पास चले गये। उनके पिता सरकारी पदाधिकारी थे। पदाधिकारियों के साथ स्थानान्तरण का योग लगा रहता है। उनके पिता की बदली एक स्थान से दूसरे स्थान पर होती रही। अतः उन्हें भी शिक्षा पाने के लिये कई स्थानों पर जाना पड़ा। प्रवेशिका तक की शिक्षा तो उन्होंने कई हाई स्कूलों में प्राप्त की। मुजफ्फरपुर, हजारीबाग, छपरा आदि कई जगहों में उन्होंने शिक्षा पायी। सन् १९१६ में उन्होंने प्रवेशिका परीक्षा पास की। उनका नाम मुजफ्फरपुर कालेज में लिखाया गया। कालेज में आते ही उनकी लोकप्रियता ऐसी व्याप्त हुई कि

उनके बगैर कालेज की परिषदें फीकी लगती थीं। धीरे-धीरे उनकी लोकप्रियता पूरे मुजफ्फरपुर में फैली। मुजफ्फरपुर में लोग आज भी कहते हैं कि किसी भी सभा, समिति जिसमें वे उपस्थित रहते थे, उसमें एक गाना उनका होना निश्चित था। वे अपना ही गीत गाते थे।

जिन दिनों मनोरञ्जन बाबू मुजफ्फरपुर कालेज में पढ़ते थे, उन दिनों चम्पारण में नीलहों द्वारा अत्याचार होता था। 'तीनकठिया' रिवाज के चलते कितनों को नील बोने के लिये वे मजबूर कर रहे थे। पूरे चम्पारण में नीलहों की शोषण नीति से हाहाकार मचा हुआ था। किसानों को सहारा देने के लिए महात्मा गान्धी प्रथम बार बिहार आये। पटना से वे मुजफ्फरपुर गये। मुजफ्फरपुर कालेज में उन दिनों आचार्य कृपालानी जी अध्यापक थे। महात्मा गान्धी ने उन्हें तार द्वारा सूचित किया था कि वे आधी रात को मुजफ्फरपुर पहुँच रहे हैं। तार मिलने के कुछ ही घन्टे के बाद महात्मा जी वहाँ पहुँचने वाले थे। उनका स्वागत करना था, पर समय कम था। महात्मा गान्धी का वहाँ भव्य स्वागत किया गया। कालेजों के छात्रों ने महात्मा जी की गाड़ी को अपने कन्धों पर खींचा था। गाड़ी खींचने वाले विद्यार्थियों के नेता मनोरञ्जन बाबू थे। बहुत वर्ष पहले मनोरञ्जन बाबू ने इस घटना का वर्णन 'झलक' में किया था। संस्मरण लिखने की कला में उन्होंने निपुणता प्राप्त की है। इस प्रकार के उनके अनेक संस्मरणात्मक निबन्ध प्रकाशित हैं, जिनका साहित्यिक मूल्य अधिक है।

कालेज में जब वे आई० ए० परीक्षा देनेवाले थे, तब वे इतना बीमार पड़े कि आई० ए० परीक्षा में सम्मिलित नहीं हो सके। उन्हें शिमला, हरिद्वार, मंसूरी आदि स्वास्थ्यकर स्थानों में रखा गया। उन स्थानों में उन्हें प्रकृति से ऐसा सम्बन्ध हो गया कि उन्होंने उसपर मुग्ध होकर अनेक कविताएँ कीं। उनके मित्रों का कहना है कि वे कविताएँ बहुत ही अच्छी थीं। अच्छे होने पर उन्होंने आई० ए० की परीक्षा दी और सन् १६१६ में पास की। इसके बाद पटना कालेज में बी० ए० में नाम लिखाया। बी० ए० की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे कि महात्मा गान्धी ने असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया। उन्होंने स्कूल और कालेज के विद्यार्थियों से कहा कि वे सरकारी स्कूल एवं कालेज को छोड़ दें। बापू का आदेश पाते ही उन्होंने कालेज को छोड़ दिया। असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े।

असहयोग काल में मनोरंजन बाबू ने अच्छा नाम कमाया था। उन्हीं दिनों उनका लोक-प्रिय गीत 'फिरंगिया' प्रकाश में आया। इस गीत के चलते मनोरंजन बाबू ने अच्छी ख्याति पायी। उन्हें उसी गीत के लिए राष्ट्रकवि कहा जाता था। महात्मा गान्धी को भी वह गीत बहुत पसन्द था। महात्मा गांधी ने उनका नाम ही फिरंगिया रख दिया था। हजारों सभाओं में वह गीत गाया गया था। उन्हीं दिनों उन्होंने और भी राष्ट्रीय कविताएँ की थीं। उनकी राष्ट्रीय कविताओं का एक संग्रह 'राष्ट्रीय मुरली' नाम से प्रकाशित हुआ था। महात्मा गान्धी के चलते उनकी ख्याति गुजरात में भी पहुँच गई थी। उनकी नियुक्ति

गुजरात विद्यापीठ के हिन्दी अध्यापक के पद पर हुई थी। पर वे पदग्रहण नहीं कर सके। काशी में उन दिनों वे बीमार पड़ गये। इस कारण गुजरात नहीं जा सके। असहयोग आन्दोलन की समाप्ति पर उन्हें 'वैद्यक' पढ़ने की राय दी गई। उन्होंने उसे आरम्भ किया। पर उनका मन उसमें नहीं लगा। इस कारण उन्होंने वैद्यक पढ़ना छोड़ दिया। सन् १९२४ ई० की जुलाई में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में उन्होंने बी० ए० में नाम लिखाया। वहीं से बी० ए० की परीक्षा हिन्दी और अंग्रेजी साहित्य में आनर्स लेकर सर्वप्रथम होकर उन्होंने पास की। बाद में वहीं से एम० ए० भी उन्होंने किया। सन् १९२८ में एम० ए० पास करने के बाद कायस्थ पाठशाला (प्रयाग) में अध्यापक नियुक्त हुए। सन् १९२९ में काशी विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर नियुक्त हुए। काशी विश्वविद्यालय में १० वर्ष तक अध्यापन कार्य किया। सन् १९३९ में राजेन्द्र कालेज छपरा में प्रिंसिपल होकर आये। इन दिनों मनोरंजन बाबू हिन्दी विद्यापीठ के कुलपति हैं।

मनोरंजन बाबू में बचपन से लिखने की प्रवृत्ति थी। १२ वर्ष की अवस्था से ही वे लिखने लगे थे। मैथिलीशरण जी की कविताओं से वे बहुत प्रभावित थे। छोटी-छोटी कविताएँ लिखकर अपने सहपाठियों में उन्होंने अपना रंग जमाया। उनकी पहली रचना सन् १९१० में साप्ताहिक 'शिक्षा' में छपी। 'फिरंगिया' गीत लिखकर तो उन्होंने अच्छा नाम कमाया था। उस समय उनकी दूसरी रचना 'सब कहते हैं कुँअर सिंह भी बड़ा

वीर मर्दाना था, अस्सी वर्षों की हड्डी में जागा जोश पुराना था' प्रकाशित हुई। यह कविता भी बहुत ही लोकप्रिय हुई। उनकी लिखी हुई पुस्तकें हैं— १. राष्ट्रीय मुरली, २. राजा कुँअर सिंह, ३. उत्तराखण्ड के पथ पर, ४. गौतम बुद्ध, ५. गुनगुन, ६. संगिनी। इनके अतिरिक्त उनके बहुत-से निबन्ध और संस्मरण हैं जो राष्ट्र की सम्पत्ति हैं, वे इधर-उधर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं, उनका संकलन होना चाहिए। सम्मेलन की ओर से एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी, उसमें उनकी कविताओं के विषय में कहा गया है—"उनकी कविताओं की भाषा बहुत सरल और मुहावरेदार होती है। किन्तु उनमें व्यंजित भाव बड़े सरस और अनूठे होते हैं। उनके विडम्बना-काव्य हिन्दी में हास्य रस के बड़े रोचक नमूने हैं। वे अपनी कविताओं को बहुत मधुर स्वर में हृदयग्राही ढंग से सुनाते हैं।"

●

आचार्य श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र

आज हिन्दी भारत के भाल की बिन्दी है। पर एक दिन ऐसा भी हमारे यहाँ आया था, जब हिन्दी का नाम ही लोगों को पसन्द नहीं था। उन्हें राष्ट्र भाषा तो चाहिए, पर हिन्दी नाम नहीं। हिन्दी नाम को बदलने के लिये इतना आन्दोलन हुआ कि हिन्दी भक्त भी नाम बदलने के पक्ष में आ गये। प्रस्ताव भी होने लगा कि हिन्दी का नाम बदल कर भारती कर दिया जाय। मैंने भी इस प्रस्ताव का समर्थन किया। आज भी मैं हिन्दी के लिये राष्ट्र भारती का शब्द व्यवहार करता हूँ। पर हिन्दी नाम के विरोधियों को भारती नाम भी पसन्द नहीं आया। उन्होंने हिन्दी का नाम 'हिन्दुस्तानी' रखना चाहा। इसका हमने विरोध किया। हम लोगों को कुछ ही कांग्रेस नेताओं का इसमें समर्थन मिला। बहुत-सा तो हमारे साहित्यक नेता थे वे भी हिन्दुस्तानी के पक्षपाती हो गये थे। सम्मेलन में भी हमलोगों के बीच में मतभेद था। हिन्दुस्तानी के स्वरूप को लेकर हमलोगों के बीच आपस में ही वाद-विवाद चल रहा था। उसी वाद-विवाद के सन्दर्भ में हम लोगों को एक ऐसे व्यक्ति का सहयोग एवं समर्थन प्राप्त हुआ। हम लोगों के सम्बन्ध में उनलोगों की राय होती जा रही थी कि हिन्दी का समर्थन हम लोग किसी संकीर्ण साम्प्रदायिक

भावना से प्रेरित होकर कर रहे हैं। इस राय का खण्डन करते हुए उस व्यक्ति ने कहा—'हम चाहते हैं कि देश में रहने वाले विभिन्न सम्प्रदायों के लोग अपने को राष्ट्रीयता के रूप में इस प्रसार रंग डाले ताकि उनके विजातीय भाव सर्वथा दूर हो जायँ और देश एवं राष्ट्र के लिए उनके हृदय में सच्ची ममता जाग उठे। हिन्दी और हिन्दुस्तानी के वाद-विवाद का यह पहलू ही मेरी दृष्टि में विशेष महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जो लोग हिन्दी का समर्थन और हिन्दुस्तानी का विरोध करते हैं वे किसी संकीर्ण साम्प्रदायिक भावना से प्रेरित होकर ऐसा नहीं करते। किसी सम्प्रदाय के प्रति वैर या विद्वेष का भाव उनके मन में नहीं है। वे तो सारे भारत संघ में एक विशुद्ध भारतीय संस्कृति की नींव डालना चाहते हैं जो आगे चल कर हमारी राष्ट्रीयता के विकास और उसकी दृष्टि में सहायक सिद्ध हो। उन्होंने आगे चल कर हम लोगों की ओर से यह स्वीकार भी कर लिया था कि हमारा उर्दू या फारसी के प्रति कोई विद्वेष नहीं है। हमने उदारता पूर्वक उसके शब्दों को अपनाया है और फारसी-अरबी के जो शब्द हमारी भाषा में प्रचलित हो गये हैं, उन्हें छोड़ने के लिए भी हम लोग "तैयार नहीं हैं" इस प्रकार स्पष्ट घोषणा करने वाले व्यक्ति का नाम पं० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र है। उन दिनों उन्होंने यह स्वीकार भी किया था—अपनी भाषा में विदेशी शब्दों को ग्रहण करने में हमने जिस प्रकार उदारता से अब तक काम लिया है, उसी प्रकार

आगे भी लेते रहेंगे।

मिश्रजी चाहते हैं, भाषा सरल हो, बोधगम्य हो। पर वे मानते हैं, शब्द का अपना संस्कार होता है। उनका सम्बन्ध हमारी संस्कृति से है, हमारी परम्परा से है। जो संस्कार बोधक शब्द हैं, उन्हें त्याग कर सम्मान भाषा के नाम पर ऐसे शब्दों का प्रयोग हो, जो संस्कृति बोधक शब्द नहीं है, ऐसे शब्दों को वे हिन्दी के शब्द कोष में लेना नहीं चाहते। जब हिन्दुस्तानी के युग में बेगम, उस्ताद आदि शब्दों का प्रयोग होने लगा था तब उन्होंने उसका विरोध किया था। उन्होंने कहा था—'भाषा सरल हो और सरलता के खयाल से उसमें सब भाषाओं के, अंग्रेजी के भी प्रचलित शब्द लिये जायँ, इसमें किसी भी विचारवान व्यक्ति को आपत्ति नहीं हो सकती है किन्तु सरलता का अर्थ यदि यह हो कि माँ-बाप की जगह पर अब्बा और अम्मा का, सूर्य्य या सूरज की जगह पर आफताब का, पश्चिम की जगह पर मगरिब का, रानी की जगह पर बेगम का, पढ़ाई या शिक्षा की जगह पर तालीम का, देश या मुल्क की जगह पर वतन का व्यवहार किया जाय तो इसे हम घोर साम्प्रदायिकता के सिवा और कुछ नहीं समझते। मेरे विचार से हिन्दुस्तानी के नाम पर इस प्रकार की राष्ट्रभाषा को देश के ऊपर लादना सरासर अन्याय है।

हिन्दुस्तानी के नाम एवं स्वरूप को लेकर बिहार में हम लोगोंने एक ऐसा आन्दोलन किया था, जिसका अपना एक रोचक इतिहास है। राष्ट्रभाषा आन्दोलन में उसका एक बहुत

बड़ा स्थान है। पं० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र ने हम लोगों का उस समय जो नेतृत्व किया था, उसके प्रति आज आभार प्रकट करने में हमें सन्तोष हो रहा है।

पं० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र का जन्म दरभंगा जिला के अन्तर्गत सदर थाना में अवस्थित पतौर गाँव में जुलाई, १८९७ ई०, विक्रम सम्बत् १९५४ में हुआ है। शैशव काल में उन्होंने अपनी प्रतिभा का जो परिचय दिया, उसे देखकर लोगों को अनुमान होने लगा था कि बालक जगन्नाथ आगे चलकर एक महापुरुष होगा। वह भारत का एक महान् व्यक्ति होगा। अपनी प्रतिभा के सहारे ही मिश्र जी ने अपने सम्बन्ध में लोगों की जो धारणायें बनी थी, उसे सिद्ध कर दिखलाया। मिश्र जी की गणना भारत के कुछ ही साहित्यकारों में होती है। उनको अपने बीच पाकर बिहार भी अपने को गौरवान्वित मानता है। मिश्र जी की शिक्षा गाँव के स्कूल में आरम्भ हुई। गाँव से प्राथमिक शिक्षा पाकर उन्हें दरभंगा जिला स्कूल में भर्ती कराया गया। इन्ट्रेन्स परीक्षा पास करने के बाद भूमिहार ब्राह्मण कालेज (इस समय लंगट सिंह कालेज) में कालेजी शिक्षा के लिए नाम लिखाया। कुछ समय तक कलकत्ता में उन्होंने अध्ययन किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय से उन्होंने एम० ए० की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किया। उन्हें स्वर्णपदक मिला था।

शिक्षा प्राप्त कर मिश्र जी को जीवन में प्रवेश करना पड़ा।

राष्ट्रीय विचार रखने के कारण सरकारी नौकरी करने की ओर उनका ध्यान नहीं गया। ऐसे लोगों के लिए उन दिनों सेवा के क्षेत्र थे— पत्रकारिता, वकालत और शिक्षण। मिश्र जी ने इन तीनों ही सेवा के क्षेत्रों को अपनाया। सन् १९२१-२२ में कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'कलकत्ता-समाचार' में काम करने लगे। उसमें वे संयुक्त सम्पादक थे। कुछ ही समय के अन्दर उन्होंने अपनी पत्रकारिता का जो परिचय दिया उस पर लोग मुग्ध थे। लोग आज भी कहते हैं, अगर मिश्र जी ने वकालत के लिए पत्रकारिता को नहीं त्याग दिया होता तो कुछ ही अर्से में वे पत्रकारिता में नाम कमाये होते। पर वे पत्रकारिता से अलग होकर सन् १९२३ में दरभंगा में रहकर वकालत करने लगे। आदमी तो प्रतिभाशील वे हैं ही; वकालत के क्षेत्र में भी उनकी प्रतिभा निखर उठी। उनकी ख्याति फैलने लगी। वकालत के क्षेत्र में उन्होंने अच्छा नाम कमाया। राष्ट्रीय विचार धाराओं के कारण उनकी वकालत की अनुज्ञाप्ति (लाइसेन्स) उच्च न्यायालय द्वारा जप्त कर ली गई। यह भी एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। उन्हें पुनः पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश करने का अवसर मिला। सन् १९३१ में दैनिक 'भारत मित्र' में सहकारी सम्पादक के रूप में कार्यभार उन्होंने सम्भाला। वहाँ वे दो वर्ष तक रहे। सन् १९३३ से ३८ तक वे 'विश्वबन्धु' मासिक के संयुक्त सम्पादक रहे। 'विश्व मित्र' का सम्पादन किया। इस अवधि में उन्होंने मासिक विश्वमित्र को एक

आदर्श पत्र बना दिया। विश्वमित्र की गणना भारत के प्रमुख मासिक पत्रों में होने लगी थी। मासिक विशाल भारत के सम्पादकीय विभाग में भी श्री बनारसी दास चतुर्वेदी के साथ उन्होंने काम किया है। सन् १९४९ में पटना के प्रसिद्ध मासिक 'हिमालय' के वे सम्पादक रहे थे। मिश्र जी ने साहित्येतर साहित्य के निर्माण में बहुत योगदान दिया है।

सम्पादकीय विभाग में काम करनेवाले साहित्यकारों में अधिकांश ऐसे हैं जो अपने पत्र के अतिरिक्त दूसरे पत्र में लिखते नहीं। हो सकता है कि समयाभाव के कारण ऐसा होता ह:। पर मिश्र जी ने अपने पत्रों के लिए लिखने के अतिरिक्त अन्य पत्र के लिए भी बहुत लिखा है। भारत का शायद ही कोई दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्र होगा जिसमें उनकी रचनायें नहीं छपी हों। उनकी लेखनी से प्राय: भारत के सभी हिन्दी पत्र गौरवान्वित हुए हैं। सन् १९५०–५२ तक उन्होंने पटना से प्रकाशित होने वाली दैनिक पत्रिका राष्ट्रवाणी का भी सम्पादन किया था। आज भी दरभंगा से प्रकाशित होने वाले 'विदेह' और पटना से प्रकाशित होने वाले 'पुस्तकालय' का सम्पादन वे कर रहे हैं।

जगन्नाथ प्रसाद मिश्र की प्रतिभा न केवल पत्रकारिता और वकालत में निखरी थी, वह तो अध्यापन के क्षेत्र में और भी चमकी। दरभंगा में सन् १९३८-१९ ९ तक वे चन्द्रधारी मिथिला कालेज में हिन्दी-विभागाध्यक्ष थे। उस पद पर रह

कर उन्होंने उस कालेज की ही नहीं, विश्वविद्यालय की बड़ी सेवा की है। उनके कुछ छात्रों से मुझे मिलने का अवसर प्राप्त हुआ है। मेरे एक निकटतम सम्बन्धी उनके शिष्य रह चुके हैं। उनसे कालेज में उनकी जो लोकप्रियता थी, उसकी जानकारी मुझे मिली है। कालेज के सभी विद्यार्थी, चाहे वे हिन्दी के विद्यार्थी न भी रहे हों, मिश्र जी को श्रद्धा से देखते थे। उनके प्रति सभी नतमस्तक थे। मिश्र जी अनुशासन प्रिय व्यक्ति हैं। अपने विद्यार्थी से वे अनुशासन पालन की अपेक्षा रखते हैं। सन् १९५९ में मिश्र जी ने महारानी रामेश्वरी महिला महाविद्यालय में प्राचार्य के पद का कार्यभार ग्रहण किया। वे अबतक उस पद पर बने हुए हैं। छात्राओं के बीच भी उनकी लोकप्रियता वैसी ही है।

पं० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र का सार्वजनिक संस्थाओं से भी सम्बन्ध रहा है। सार्वजनिक संस्थायें उनसे जीवन पाती रही हैं। उन्हें गतिशील बनाने में उनका बहुत योगदान रहा है। बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन से उनका सम्बन्ध बहुत पुराना है। उसके मुजफ्फरपुर अधिवेशन में उन्होंने सभापतित्व किया है। उस अवसर पर उन्होंने जो भाषण दिया था, वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। उसका ऐतिहासिक महत्व है। बिहार राज्य पुस्तकालय संघ के संस्थापकों में वे एक रहे हैं। उनके नेतृत्व में बिहार राज्य पुस्तकालय आन्दोलन आरम्भ हुआ था। सन् १९५२ से अबतक उस संघ के वे अध्यक्ष हैं। बिहार के सरकारी कार्यालय में हिन्दी में काम हो- ऐसा जब निर्णय बिहार

सरकार ने किया और उसने एक हिन्दी प्रगति समिति गठित की, तब मिश्र जी सन् १९५२ में उस समिति के सदस्य बनाये गये। वे उस समिति के सदस्य तबसे अबतक बने हुए हैं। वे हिन्दी विज्ञ समिति के भी सदस्य हैं। आकाश-वाणी सलाहकार समिति के भी वे सदस्य रह चुके हैं। आज भी आकाशवाणी के ग्रामीण सलाहकार समिति के सदस्य हैं। बिहार सरकार के जन सप्लाई विभाग की सलाहकार समिति के वे सदस्य रहे हैं। पुराने बिहार विश्वविद्यालय की सिनेट के सदस्य वे रहे हैं। बिहार विधान परिषद् के सदस्य १९५२-६२ तक वे रहे हैं। उन्होंने लिखना तब आरम्भ किया जब वे विद्यार्थी थे। आज तक वे बिना किसी विश्राम के लिखते जा रहे हैं। उनकी प्रकाशित पुस्तकें कई हैं, जिनमें निम्नलिखित पुस्तकें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—(१) साहित्य की वर्त्तमान धारा (२) जीवन देवता की वाणी (३) मनुष्य की मार्यादा (४) एक ही दुनिया (५) समाजवाद क्या है? (६) प्रेम और दाम्पत्य (७) दरभंगा (८) बच्चों का चिड़िया खाना, (९) जानते हो? (१०) प्रेम प्रपंच (११) स्वाभिमानी (१२) जीवन और जगत (१३) एक ही दुनिया (१४) साहित्य विवेचना (१५) साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियाँ (१६) राजनीति विज्ञान, (१७) विश्वामित्र (१८) व्यास (१९) दुर्वासा (२०) अगस्त्य; (२१) महान् मनीषी आदि। इन पुस्तकों के अतिरिक्त उनके सैकड़ों की संख्या में निबन्ध विभिन्न विषयों पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। मेरे जानते ऐसा कोई विषय नहीं

है, जिस पर उन्होंने नहीं लिखा है ? इनके निबन्धों का संकलन होना चाहिए। इनके निबन्ध इस बात के प्रमाण हैं कि मिश्र जी बहुत ही अध्ययनशील व्यक्ति हैं। उनके निबन्ध के चार प्रमुख क्षेत्र हैं-आलोचना, वैयक्तिक, सामाजिक एवं साहित्यक। मिश्रजी ने बाल साहित्य का निर्माण किया है, वह केवल बच्चों के लिए नहीं है, उससे व्यस्कों को भी ज्ञान प्राप्त होगा।

मिश्र जी लेखनी और वाणी — दोनों में कुशल हैं। उनकी गणना हिन्दी के अच्छे वक्ताओं में होती है। बिहार के सर्वश्रेष्ठ वक्ताओं में उनको स्थान प्राप्त है। वे हिन्दी मंच के प्रमुख वक्ता हैं। भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के विश्व कोष माने जाते हैं। भगवान इस तपस्वी साहित्यकार को दीर्घ जीवन दान दें।

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

"साहित्य के प्रचार का तीन साधन-अभिनय, नृत्य और संगीत हो सकता है। इन तीनों का सहारा लेकर हम साहित्य को जनसाधारण तक पहुँचा सकते हैं।' इन शब्दों के साथ श्री रामबृक्ष बेनीपुरी ने बिहार कला-केन्द्र की स्थापना की। इस संस्था का संचालनभार सम्मेलन पर था। कला-केन्द्र का विधान बनाने के लिए एक उप-समिति बनायी गई थी, जिसका संयोजक इन पंक्तियों का लेखक था। सम्मेलन के विशाल भवन में बिहार कलाकेन्द्र की स्थापना करके बेनीपुरी जी ने सम्मेलन के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ दिया है। बेनीपुरी जी का साहित्य-निर्माण का एक अपना आदर्श है, एक कसौटी है। वे मानते हैं, साहित्य जनता का जीवन बने। वे कहते हैं—'साहित्य को अगर बहुरंगी बनना है, सतरंगी बनना है, तो उसे रंगों के लिए जन-जीवन में प्रवेश करना है। कारण, उनके अनुसार अजन्ता की अपूर्व चित्रकारी के लिए उसके कलाकारों ने उसी के आसपास की मिट्टी से, पत्थर से, पौधों की जड़ से, पौधों की पत्तियों से, फूलों से रंग संचित किये हैं। बेनीपुरी जी ने हमारे साहित्यकारों से कहा है—'हमारे साहित्य के लिए रंग चाहिए, वे हमारे चारों ओर, जन-जीवन में प्रचुरता से ओतप्रोत हैं—आँखें चाहिए, जो उन्हें देखे; पैर चाहिए जो उनका संग्रह

करे, हाथ चाहिए जो उनका प्रयोग करे।' बेनीपुरी जी को दुःख है, आज का साहित्यकार ऐसा साहित्य नहीं दे पा रहा है, जिस साहित्य में जाति हो। उससे लोगों में मस्ती आये। वर्तमान साहित्यिक उपलब्धियों पर उन्हें क्षोभ है। उन्हें दुःख है कि आज के कलाकार हाथ-पैर नहीं हिलाते। वे तो एक वृत्त के अन्दर अपने को बन्द किये कुछ विचारों, कुछ भावनाओं कुछ चित्रों का चर्बित-चर्वन करते-रहते हैं।'

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी की जन्म तिथि अज्ञात है। एकबार उन्होंने मुझे बताया था कि उनका जन्म सम्भवतः १६ जनवरी, १६०२ ई० को हुआ था। उनका जन्म मुजफ्फरपुर जिला के कटरा थाना के अन्तर्गत बेनीपुर गाँव में हुआ। उनके पिता का नाम श्री फूलवन्त सिंह है। उनके दादा श्री यदुनन्दन सिंह एक साधरण किसान थे। बेनीपुरी जी को माता पिता को स्नेह-छाया बहुत दिनों तक नहीं मिली। जब बेनीपुरी जी ४ वर्ष के थे, तब उनकी माता का और ६ वर्ष की अवस्था में उनके पिता का देहान्त हो गया। पिता के देहान्त के बाद बेनीपुरी जी अपने मामा के घर गये। उनके मामा श्री द्वारका सिंह ने उन्हें पुत्रवत् स्नेह दिया। उनकी ही देखदेख में उनकी शिक्षा आरम्भ हुई। पहले कुछ समय तक उनकी शिक्षा घर पर ही हुई। घर पर शिक्षा प्राप्त करने के बाद उनका नाम ननिहाल के गाँव के प्राथमिक स्कूल में लिखाया गया। एक वर्ष में उन्होंने लोअर पास कर लिया। घर पर ही रख कर उन्हें उनके मामा श्री द्वारका सिंह ने दो वर्ष तक

रामायण और उर्दू पढ़ाया। बाद में अपने बहनोई बाबू प्रदीप नारायण ठाकुर के यहाँ वे रहने लगे। बेनीपुरी जी को उन्होंने अंग्रेजी पढ़ने के लिए प्रेरित किया। वे पढ़ने में तेज़ थे। वे परीक्षा में सर्वप्रथम होते थे। पर बचपन में काफ़ी नटखट थे। उन्हें उस समय की अपनी नटखट प्रवृत्ति पर नाज़ है। पुस्तक बहुत पढ़ते थे। पर जो पुस्तकें वे पढ़ते थे, उनमें अधिकांश उनके पाठ्य से अलग की थीं। 'भारत-भारती' को वे बड़े चाव से पढ़ते थे। उन्होंने विभिन्न स्कूलों में अध्ययन किया। जब वे आठवीं कक्षा में पढ़ते थे तभी उन्होंने हिन्दी की विशारद परीक्षा पास की। उस समय उनकी आयु १५ वर्ष की थी। जब वे मैट्रिक में पहुँचे थे, तब असहयोग आन्दोलन का आरम्भ हो गया। बेनीपुरी जी ने असहयोग के नियमानुसार स्कूल छोड़ दिया। असहयोग करने के बाद वे राजनीति में आ गये। कांग्रेस का प्रचार कार्य उन्होंने आरम्भ किया। असहयोग के दिनों में उन्होंने पत्रकारिता-जीवन आरम्भ किया। सन् १६२१ में 'तरुण भारत' के सम्पादकीय विभाग में उन्होंने काम आरम्भ किया। उस समय उनकी आयु २० वर्ष की थी। बंगला और गुजराती भी पढ़ना उन्होंने उसी समय आरम्भ किया था। 'तरुण भारत' के बाद सन् १६२२ में 'किसान मित्र' के सहकारी सम्पादक हुए। जब बेनीपुरी जी 'किसान-मित्र' में काम कर रहे थे, तब उन्हें 'काशश्वास' बीमारी हो गई थी। वे उस बीमारी से मरते-मरते बचे। अच्छा होने के बाद आचार्य शिवपूजन

सहाय की प्रेरणा से उन्होंने सन् १६२४ में 'गोलमाल' में काम किया। इसके बाद पुस्तक भण्डार में वे आये। पहले तो पुस्तक भण्डार के साहित्यिक विभाग में उन्होंने काम आरम्भ किया। जब पुस्तक भण्डार से 'बालक' निकला, तब सन् १६२६ में वे उसके सम्पादक बनाये गये। 'बालक' को उन्होंने भारत की सर्वश्रेष्ठ बालकोपयोगी मासिक पत्रिका बनाने की योजना तैयार की। पुस्तक भण्डार के मालिक श्री रामलोचन शरण का आशीर्वाद उन्हें प्राप्त था। कुछ ही दिनों के अन्दर 'बालक' की चर्चा बिहार प्रदेश में ही नहीं, बिहार के बाहर भी होने लगी। आज तो बालकोपयोगी बहुत से पत्र और पत्रिकायें निकलती हैं, पर उन दिनों 'बालक' ही एक पत्र था। सन् १६३६ में उन्होंने 'युवक' निकाला उसका सम्पादक भी स्वयं उन्होंने किया। सन् १६३० के आन्दोलन में जब वे जेल भेज दिये गये, तब उन्होंने जेल में एक पत्र 'कैदी' निकाला। वह पत्र हस्तलिखित था। उस पत्र को देखने का एक बार अवसर मिला था। उस पत्र में राजनीतिक इतिहास की बड़ी-बड़ी उपलब्धियाँ प्रकाशित थीं। पर खेद है, कैदी के सभी अंक अब अप्राप्य हो गये हैं। राष्ट्रमूर्ति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्म-कथा में उसका उल्लेख किया है। सन १६३४ में मुजफ्फरपुर से लोकसंग्रह का उन्होंने सम्पादन किया था। कुछ समय के लिए खण्डवा से प्रकाशित 'कर्मवीर' का सम्पादन किया था। उसके वे कार्यकारी सम्पादक थे। बेनीपुरी जी को अपने

मन के अनुरूप कोई पत्र नहीं मिला था। सन १९ ३ में उन्होंने 'योगी' को अपने 'मन के अनुरूप' निकाला। दो वर्षों के अन्दर योगी को भारत का प्रमुख साप्ताहिक उन्होंने बना दिया। 'योगी' को एक आदर्श साप्ताहिक बनाना चाहते थे, जब उन्हें उसे अपने ढंग से निकालने में कठिनाई हुई, तब उससे वे अलग हो गये। उसके बाद सन १९३७ में बेनीपुरी जी ने 'जनता' साप्ताहिक को निकाला। जनता का पहला अंक ऐसा निकाला कि वह एक ही दिन में पटना नगर में खप गया। उसकी बड़ी मांग हुई। उस अंक का दूसरा संस्करण निकाला गया। पत्रकारिता के इतिहास में यह घटना बेमिशाल है। 'जनता' का जीवन संघर्षपूर्ण रहा। सरकार की कोप दृष्टि उस पर लगी हुई थी। जनता के शहीद अंक और किसान अंक बहुत ही महत्वपूर्ण रहे हैं। अगस्त क्रान्ति की भूमिका तैयार करने में जनता का हाथ कम नहीं है। जनता के द्वारा ही उन्होंने यह नारा दिया था—'युद्ध में न देंगे हम एक पाई, न भेजेंगे एक पाई और न जायेगा मेरा भाई।' यही नारा बाद में देश का बना था। जब वे गिरफ्तार हुए और हजारीबाग जेल में रखे गये तब उन्होंने हजारीबाग जेल से 'तूफान' निकाला। यह हस्तलिखित पत्र था। सन १९४६ ई० में 'हिमालय' में आचार्य शिवपूजन सहाय के वे सहकारी सम्पादक थे। सन १९४६ में उन्होंने पुनः 'जनता' का सम्पादन आरम्भ किया। सन् १९४८ में आचार्य नरेन्द्रदेव ने काशी में जनवाणी निकाला। जनवाणी के सम्पादक मण्डल में उन्होंने अपने

साथ बेनीपुरी जी को भी रक्खा। सन् १९५० में राजा राधिका रमण ने 'नई धारा' का प्रकाशन आरम्भ किया और सम्पादन का भार बेनीपुरी जी को सौंपा; वे आज भी उसका सम्पादन कर रहे हैं। उस समय बेनीपुरी जी ने 'चुन्नू-मुन्नू' का सम्पादन आरम्भ किया। जब सन् १९५१ में जनता का दैनिक संस्करण निकला, तब वे उसके प्रधान सम्पादक हुए।

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी जी का राजनैतिक जीवन भी कम रोचक नहीं है। कांग्रेस से उनका सम्बन्ध सन् १९२१ से हुआ और वह सम्बन्ध तब तक बना रहा, जब तक अखिल भारतीय समाजवादी दल का कांग्रेस से सम्बन्ध रहा। कांग्रेस से जब समाजवादी दल ने अपना सम्बन्ध तोड़ दिया, तब वे कांग्रेस से अलग हो गये। कांग्रेस से अलग हो जाने के बाद, उन्होंने एक बार यह कहा था—कांग्रेस से अलग होकर हम लोगों ने अच्छा नहीं किया। कांग्रेस के अन्दर रहकर ही अपने सिद्धान्तों के लिये संघर्ष करना था। कांग्रेस द्वारा संचालित सभी आन्दलनों में बेनीपुरी जी ने भाग लिया। सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन में उन्होंने अपनी पढ़ाई छोड़ दी, सन् १९३० के आन्दोलन में वे गिरफ्तार हुए और उन्हें छः महीने की सजा हुई। सन् १९३२ में भी वे पकड़े गये। इस बार उन्हें डेढ़ वर्ष की सजा हुई थी। सन् १९३५ का विधान सन् १९३७ में चालू किया गया तथा उस विधान का विरोध करने के कारण वे जयप्रकाश बाबू के साथ गिरफ्तार हुए और उन्हें तीन माह की सज़ा हुई। सन्

१९३८ में भी दो दिनों के लिये जेल में रखे गये। उसी प्रकार दो सप्ताह के लिए सन् १९३९ में पटना जेल में रखे गये। युद्ध-विरोधी आन्दोलन के सम्बन्ध में सन् १९४० में एक वर्ष की सजा उन्होंने हजारीबाग जेल में काटी। सन् १९४१ में उन्हें ६ महीने की सजा हुई थी और मुजफ्फर-पुर जेल में वे रखे गये थे। सन् १९४२ के आन्दोलन में उन्हें दो वर्ष की सजा हुई थी। इस अवधि में बेनीपुरी जी को सीतामढ़ी, मधुबनी और दरभंगा जेल में रक्खा गया। अगस्त १९४२ से १९४५ जुलाई तक वे लगभग तीन वर्ष के लिए हजारीबाग जेल में नजरबन्द रखे गये थे। बेनीपुरी जी पटना जिला कांग्रेस समिति के काफी अर्से तक अध्यक्ष हुए थे। आरम्भ से ही कांग्रेस के गरम तत्वों का उन्होंने समर्थन किया। किसान आन्दोलन के वे प्राण थे। उन्होंने वाणी एवं अपनी लेखनी से किसानों को जगाया, उन्हें संगठित किया था। मजदूर आन्दोलन से भी उनका सम्बन्ध रहा है। कांग्रेस समाजवादी दल जब बिहार में स्थापित हुआ, तब बेनी-पुरी जी का उससे सम्बन्ध हो गया। समाजवादी दल जब कांग्रेस से अलग हो गया, तब वे भी उसके साथ कांग्रेस से अलग हो गये। आज भी वे प्रजा समाजवादी दल में हैं। लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव पारित होने के पूर्व ही बेनीपुरी जी ने सन् १९२९ में बिहार राजनीतिक कान्फ्रेन्स (मुंगेर) में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव लाया और उसे उन्होंने पारित कराया। जमीं-

दारी उन्मूलन हो—जब यह नारा देश में दिया जाने लगा, तब बेनीपुरी जी ने उसका समर्थन किया। फैजपुर कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने जमीन्दारी उन्मूलन का प्रस्ताव पेश किया। किसान सभा के साथ उनका सम्बन्ध बहुत पुराना है। वे बिहार प्रान्तीय किसान सभा के सभापति रह चुके हैं, वे अखिल भारतीय किसान-सभा के उपसभापति रहे हैं।

बिहार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन से उनका सम्बन्ध जन्म से ही रहा है। उनकी गणना उसके संस्थापकों में होती है। वे उसके प्रारम्भिक-युग में सहकारी मन्त्री, और उसके बाद वे उसके संयुक्त मंत्री भी हुए थे। सम्मेलन के प्रधानमन्त्री के रूप में वे सन् १९४६ से लेकर १९५० तक रहे हैं। जब बेनीपुरी जी सम्मेलन के प्रधानमन्त्री थे तब मैं उनके साथ उनके मन्त्रि-मण्डल का एक सदस्य था। बिहार के बाहर सम्मेलन की जो प्रतिष्ठा बेनीपुरी जी के समय हुई, वैसी प्रतिष्ठा सम्मेलन को कभी प्राप्त नहीं हुई थी। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन को आयोजित करने का श्रेय उस समय बिहार सम्मेलन को था और उसके मन्त्री बेनीपुरी जी को था। बेनीपुरी जी सम्मेलन के अध्यक्ष भी रह चुके हैं। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन से बेनीपुरी जी का सम्बन्ध रहा है।

बेनीपुरी जी की साहित्यिक उपब्लियाँ बहुत अधिक हैं। लगभग ३० पुस्तकें उनके नाम से छपी हैं। बचपन से कविता करने का उन्हें शौक रहा है। उनकी पहली कविता 'बीसवीं सदी के श्री कृष्ण' शीर्षक से 'प्रताप' में छपी थी। उस कविता को

लोगों ने बहुत ही पसन्द किया था। दर्जनों पत्रों में वह कविता 'प्रताप' से उद्धृत हुई थी। कुछ ही वर्षों तक उन्होंने कविता लिखी; बाद में उन्होंने गद्य-साहित्य को ही अपनाया। विषयों की विभिन्नता बेनीपुरी साहित्य की विशेषता है। बेनीपुरी साहित्य के अन्तर्गत नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, जीवनी, संस्मरण भ्रमण, निबन्ध, विश्लेषण सभी आता है। अपने शब्द चित्रों के लिए बेनीपुरी जी समूचे हिन्दी संसार में प्रसिद्ध हैं। उनकी शैली में जादू है। अपनी भाषा शैली के लिए उन्होंने काफी ख्याति प्राप्त की। उनकी प्रसिद्ध पुस्तकों का नाम है—'माटी की मूरतें,' 'पतितों के देश में; लालतारा; चिता के फूल, कैदी की पत्नी, गेहूँ और गुलाब; अम्बपाली, सीता की माँ, संघमित्रा, अमर ज्योति, तथागत, सिंहल-विजय, शकुन्तला, रामराज्य, नेत्रदान, गाँव के देवता, नया समाज, विजेता, नई नारी, विद्यापति की पदावली, रवीन्द्र भारती, बिहारी सतसई की टीका आदि।

रामवृक्ष बेनीपुरी जी के स्वस्थ एवं सुदीर्घ जीवन की मंगलमय कामना करते हुए उनके चरण में हम श्रद्धा-सुमन सादर समर्पित करते हैं।

[illegible]

[illegible]

पं० छविनाथ पाण्डेय

बात लगभग ३० वर्ष पहले की है। तब बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ऐसी स्थिति नहीं थी। उसका नाम जो भी हो, पर उसका न तो घर था और न उसका कोई काम ही था। तब तक सम्मेलन नाम की संस्था था। सम्मेलन अपने लक्ष्य की ओर उन्मुख नहीं था। उसके पास जो सामान थे, पुस्तकालय में जो पुस्तकें थीं, जो पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें और फरनीचर थे, सभी १९३४ के प्रलयकारी भूकम्प में नष्ट हो गये थे। ऐसी ही परिस्थिति में सम्मेलन का त्रयोदश अधिवेशन ता० २१, २२ फरवरी, सन् १९३६ ई० को पूर्णिया में हुआ। वहाँ सम्मेलन का कार्यभार एक ऐसे व्यक्ति को सौंपा गया, जिसने अपने मंत्रित्व काल में सम्मेलन को अच्छा नाम दिया। उसके समय में सम्मेलन एक महत्वपूर्ण संस्था के रूप में लोगों के सामने आया। उस व्यक्ति का नाम पंडित छविनाथ पाण्डेय है। पाण्डेय जी ने तेइसवें झरिया अधिवेशन के अवसर पर दिये गये अपने भाषण में इस परिस्थिति का वर्णन किया है। उनके ही शब्दों में परिस्थिति इस प्रकार थी—'उस समय सम्मेलन की लाश भर नहीं उठी थी, अन्यथा मर ही चुका था। सन् १९३६ ई० में सम्मेलन के पूर्णिया-अधिवेशन में सम्मेलन का मंत्रित्व का भार सौंपा गया—वहीं सुहृदय श्री जनार्दन प्रसाद

झा 'द्विज' ने सम्मेलन का कार्यभार भी मुझे सौंपा—लिफाफे के एक टुकड़े पर सम्मेलन का हिसाब नकद चार रुपये और मुजफ्फरपुर के 'सुन्दर-प्रेस' का साढ़े आठ रुपये का बिल। एसी विरासत किसी को किसी ने नहीं दी होगी। सन् १९४२ में अपनी गिरफ्तारी के कारण मुझे यह पद छोड़ने को विवश होना पड़ा। उस समय सम्मेलन कोष के 'फिक्स्ड डिपोजिट' में पाँच हजार रुपये, सेविंग बैंक में एक हजार रुपये, चालू खाते में नौ सौ रुपये तथा सम्मेलन-पुस्तकालय में ३४०० पुस्तकों का एक सुन्दर संग्रह मैं छोड़ गया था, जिसमें सैकड़ों अलभ्य ग्रन्थ विद्यमान थे।'

सम्मेलन का कार्यभार अपने ऊपर लेते ही पाण्डेय जी सम्मेलन को मुजफ्फरपुर से पटना लाये। सम्मेलन के जन्म-काल से सम्मेलन का प्रधान कार्यालय मुजफ्फरपुर में था। पटना आने के बाद सम्मेलन का नया जन्म हुआ। उसके जीवन का एक नया युग आरम्भ हुआ। सम्मेलन को अपना भवन चाहिए—यह पाण्डेय जी का पहला कार्यक्रम हुआ। उन्होंने सम्मेलन भवन के लिए जमीन १०) वार्षिक मालगुजारी पर ली। सम्मेलन-भवन का निर्माण-कार्य उन्होंने अपनी देख-रेख में आरम्भ कराई। सन् १९३८ में सम्मेलन-भवन का काम आरम्भ हुआ और पाण्डेय जी के मन्त्रित्व काल में सम्मेलन भवन के हाल की छत, उसकी फर्श और पलस्तर को छोड़कर सभी काम पूरा हो गया।

पण्डित श्री छविनाथ पाण्डेय की जन्मतिथि का ठीक-ठीक

पता नहीं चलता। उन्होंने स्वयं स्वीकार भी किया है कि 'अपने बाप को खाने के बाद मेरा जन्म हुआ था। मेरे ऐसे मनहूस और अभागे लड़के की जन्म-कुण्डली कौन बनवाता।' पर सम्भवतः उनका जन्म १४ अप्रील, १८९३ में हुआ है। उस दिन सतुआ संकरात था। उनका जन्म उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में एक साधारण ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके हिस्सा में जब परिवार का विभाजन हुआ तब डेढ़ बीघा खेत और चार पसेरी अन्न मिला था। पिता को तो पाण्डेय जी ने पहले ही खाकर पैदा लिया था, इसलिए उनका पुकार का नाम 'खब्बू' पड़ गया था। उनकी माँ उन्हें तथा उनके एक और भाई को लेकर अपने भाई के यहाँ चली गई। पाण्डेय जी के बचपन के पाँच वर्ष मामा के यहाँ बीते।

पाण्डेय जी की शिक्षा का आरंभ गाँव के एक प्राइमरी स्कूल में हुआ। वे पढ़ने में जितना तेज थे, उसके अनुपात में उनकी पढ़ाई समुचित ढंग से नहीं हुई। परिस्थितियों से लड़ते हुए वे पढ़ते रहे। परिस्थितियों ने कई बार ऐसी चेष्टा की कि वे न पढ़े। पर उन्हें सफलता नहीं मिली। शिक्षा के क्रम में कई बार विघ्न-बाधायें आयीं। एक बार तो ऐसी परिस्थिति आई, जब पढ़ाई-लिखाई छोड़कर उन्हें दो वर्ष तक घास छीलनी पड़ी थी। फिर भी संघर्ष करते हुए वे पढ़ते रहे। हरिश्चन्द्र स्कूल, काशी में जब भर्ती हुए तब उनकी शिक्षा समुचित ढंग से आरंभ हुई। वहाँ भी कई बार उन्हें संघर्ष करना पड़ा था। एक बार उनका नाम काटकर स्कूल से निकल जाने का आदेश हुआ था। स्कूल

के दिनों में ही पाण्डेय जी ने यह व्रत सन् १९१२ में लिया था कि वे सदैव स्वदेशी वस्त्र धारण करेंगे। इस व्रत का उन्होंने आजतक पालन किया है। सन् १९११ में जार्ज पंचम की राजगद्दी के समय बनारस में भी एक दरबार हुआ था। हरिश्चन्द्र हाई स्कूल से उस दरबार में भाग लेने के लिए ११ लड़के चुने गये थे। उसमें छबिनाथ जी भी एक थे। पर पाण्डेय जी ने उसमें भाग नहीं लिया। कारण था, उसमें पैन्ट या पायजामा पहनकर जाना था। पाण्डेय जी को दोनों से नफरत थी। इसलिए उस दरबार में उन्होंने भाग नहीं लिया। सन् १९१३ में वे द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में उनका नाम लिखा गया। सन १९१७ में उन्होंने बी० ए० परीक्षा पास की। वकालत पढ़ने के लिए वे इलाहाबाद गये। उन्होंने वकालत पढ़ी भी, पर वकालत नहीं की। उन्होंने 'अपनी बात' में स्पष्ट शब्दों में कहा है—वकालत पेशा के बारे मुझे बहुत बड़ा भ्रम था। मैं समझता था कि यह बहुत बड़ा मर्यादित पेशा है। इसमें आदमी स्वतन्त्र रहता है। सच्चाई की यहाँ अधिक गुंजाइश है। लेकिन वकालत पढ़ते समय ही मैंने अनुभव किया कि इस पेशे में न तो मर्यादा है, न स्वतन्त्रता है और न सच्चाई है।' इस कारण उन्होंने वकालत को पेशा के रूप में ग्रहण नहीं किया। उन्हें इस बात का कभी भी जरा भी पछतावा नहीं हुआ कि उन्होंने वकालत नहीं की। शिक्षा-समाप्ति के बाद उन्होंने जीवन में प्रवेश किया। पाण्डेय जी ने प्रथम-प्रथम काशी के ज्ञान-मण्डल यंत्रालय से सम्बन्ध स्थापित

किया। वहाँ पाण्डेय जी ७५) मासिक पर अनुवादक बनाये गये। दो महीना बाद जब ज्ञान मण्डल से स्वार्थ' नामक मासिक पत्र निकला, तब पाण्डेय जी उसके सहकारी सम्पादक बनाये गये। उनका वेतन ७५) से ६०) रुपया कर दिया गया। थोड़े ही दिनों के बाद उन्हें ज्ञान मण्डल प्रेस का मैनेजर १२०) मासिक वेतन पर बनाया गया। ज्ञान मण्डल में सन् १६२० में 'आज' दैनिक की नींव पड़ी। कलकत्ता कांग्रेस-अधिवेशन के अवसर पर 'आज' का पहला अंक निकला था और पाण्डेय जी उस अंक को लेकर कलकत्ता गये थे। 'आज' का प्रकाशन पाण्डेय जी के लिए वरदान स्वरूप हुआ। 'आज' के ही माध्यम से पाण्डेय जी का सम्पर्क स्वर्गीय मोतीलाल नेहरू, स्वर्गीय लाला लाजपत राय, स्वर्गीय पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, अमर शहीद श्रीगणेश शंकर विद्यार्थी, राष्ट्रकवि स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त आदि महान व्यक्तियों से हुआ। 'आज' की व्यवस्था को लेकर कुछ मतभेद हुआ। पाण्डेय जी ने ज्ञान मण्डल को छोड़ दिया। सन् १६२१ में कलकत्ता आये। वे वणिक प्रेस के व्यवस्थापक हुए। वहाँ उन्हें १५०) मासिक वेतन मिलता था। वहाँ से हटने के बाद उन्होंने हिन्दी-पुस्तक एजेन्सी में काम किया। पहले तो उनका काम था—उनके यहाँ से प्रकाशित होने वाली पुस्तकों का सम्पादन करना, प्रूफ देखना, पाण्डुलिपियों की जाँच करना और कुछ अनुवाद करना। एक वर्ष के बाद 'हिन्दी पुस्तक एजेन्सी' ने एक मासिक पत्र 'साहित्य' निकाला। पाण्डेय जी उसके सम्पादक बनाये

गये। उसमें वे 'तरंग नन्द' के नाम से 'भंग की तरंग' में शीर्षक देकर व्यंग्यात्यमक लेख प्रत्येक माह लिखते थे। वह शीर्षक बहुत ही लोकप्रिय था। साहित्य के सम्पादन में उन्होंने 'प्रेस की स्वतंत्रता' पर ध्यान रक्खा। साहित्य के तीसरे अंक में उन्होंने एक सम्पादकीय लेख लिखा। प्रेस के मालिक को वह पसन्द नहीं हुआ। उन्होंने छबिनाथ जी को कहा कि सम्पादकीय प्रेस में जाने के पहले दिखला दिया करें। ऐसा करना सम्पादक का अपमान था। पाण्डेय जी ने इन्कार कर दिया। प्रेस के मालिक को उन्होंने कहा था, सम्पादक के स्थान पर अपना नाम दे दें। काम सारा मैं कर दूँगा, लेकिन नाम आपका रहेगा। यह साहित्य में वेश्यावृत्ति भले ही हो, लेकिन मैं उसे कबूल कर लूँगा। तब आप जैसा चाहें वैसा सम्पादकीय प्रकाशित करें, लेकिन जब तक सम्पादक के स्थान पर मेरा नाम रहेगा, तबतक मैं जिसे उचित समझूँगा वही प्रकाशित होगा'' बाद में और मतभेद होने के कारण उन्होंने 'हिन्दी पुस्तक एजेन्सी' की नौकरी छोड़ दी।

उन दिनों कलकत्ता में एक कुमार सभा पुस्तकालय के द्वारा यह निश्चय हुआ था कि महात्मा गाँधी के जो लेख यंग इण्डिया में प्रकाशित हो रहे हैं, उनका हिन्दी में अनुवाद कर प्रकाशित किया जाय। छबिनाथ जी का नाम तबतक अनुवादकों में आने लगा था। तबतक उनकी मेजिनी की पुस्तक 'Rights and duties of man' का अनुवाद प्रकाशित हो गया था। यह काम कुमार सभा ने छबिनाथ जी को दिया।

पाण्डेय जी ने उन निबन्धों का अनुवाद कर पुस्तक के रूप में तीन खण्डों में प्रस्तुत किया। पत्र और पत्रिकाओं में निबन्ध लिखने लगे। पर उससे उन्हें उतना पैसा नहीं मिलता था, जितने की उनकी आवश्यकता थी। अतः वे १९२४ में कुठनी इस्टेट के मैनेजर बने। उनका बिहार से सम्बन्ध हुआ। तब से वे बिहार में रहने लगे। अब तो वे अपने को बिहारी ही मानते हैं। यहाँ पर आने के बाद उनका सम्बन्ध बिहार के जन-जीवन से हो गया। प्रथम बार बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के गया अधिवेशन में, जो सन् १९२७ में आचार्य बदरी नाथ वर्मा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ था, उन्होंने भाग लिया था। तबसे उनका सम्बन्ध सम्मेलन से रहा है। सन् १९३७ से सन् १९४२ तक वे सम्मेलन के प्रधान मंत्री रहे। सन १९५२ में प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तेइसवें अधिवेशन (झरिया) में सन् १९५२ में वे सम्मेलन के अध्यक्ष हुए। सम्मेलन का ३० वाँ अधिवेशन, जो मोकामा में हुआ था, उसके भी अध्यक्ष वे ही हुए थे। दुमका के ३१ वें अधिवेशन के वे ही अध्यक्ष हुए। सम्मेलन-भवन का निर्माण कार्य—उनकी सबसे बड़ी देन है।

कांग्रेस से भी उनका सम्बन्ध बिहार में ही हुआ। गाँधी जी ने सन् १९३० में नमक सत्याग्रह किया। छबिनाथ जी उसमें शामिल हो गये। उस आन्दोलन में उन्होंने अच्छा काम किया। उन्होंने कहा भी है 'सत्याग्रह आन्दोलन में मैंने प्रकट और गुप्त रूप से जितना काम किया है, शायद ही जिले के

किसी भी आदमी ने उतना काम किया है।" सन् १६३१ में गान्धी-इर्विन समझौता के बाद, राजेन्द्र बाबू ने उनको सर्चलाइट का मैनेजर बनाया। वे उस पद पर सन् १६३१ से १६४० तक रहे। इस बीच में कुछ दिनों के लिए उन्हें सत्याग्रह आन्दोलन में जेल भी जाना पड़ा था। सर्चलाइट से हटने के बाद खड्गविलास प्रेस में उन्होंने नौकरी कर ली। जब वे खड्गविलास में काम कर रहे थे तब १६४२ में अगस्त-आंदोलन छिड़ा। वे गिरफ्तार कर लिए गए और हजारीबाग जेल में रखे गये। जेल से मुक्त होने पर उन्हें १३ महीना मिर्जापुर में नजरबन्द रखा गया। सन् १६४५ में उनका सम्बन्ध पुनः ज्ञानमण्डल से हुआ। सन् १६४७ ई० में वे बिहार सरकार के शिक्षा-विभाग में व्यस्क-शिक्षा-संघ के प्रकाशन अधिकारी नियुक्त हुए। वहाँ से अवकाश ग्रहण करने के बाद उन्होंने 'सर्वोदय प्रेस' की स्थापना की। यह उनका अपना प्रेस है। पाण्डेय जी का जीवन बहुत संघर्षपूर्ण रहा है। फिर भी उन्होंने बहुत लिखा है। उनकी लिखित और अनूदित पुस्तकें अनेक हैं, जिन में मुख्य निम्नलिखित हैं—(१) सुशीला (२) प्रोत्साहन, (३) अंधकार, (४) माँ की ममता, (५) माँ का हृदय, (६) वे तीनों, (७) अन्न, (८) तेल, (६) जंगल, (१०) इन्द्र धनुष, (११) अनोखा आदमी (१२) विद्रोही, (१३) चरित्र-चिन्तन, (१४) सफल जीवन, (१५) मैजनीके लेख, (१६) स्त्री कर्त्तव्य शिक्षा १७ समाज, (१८) अटपटे चित्र, (१६) कलंक (२०) पुस्तकालय और उसका संचालन आदि।

इन शब्दों के साथ उनके सम्बन्ध में अपनी श्रद्धा निवेदन करते हुए मैं उनके दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित

राष्ट्र भाषा का प्रश्न अब वैसा नहीं रहा जैसा पहले था। पहले हमें राष्ट्रभाषा बनाने के लिए एक आन्दोलन करना पड़ा था। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है—ऐसा नारा हमें देना पड़ा था। उसके लिए हमें प्रचार और प्रसार करना पड़ा था। पर आज यह सर्वमान्य बात है—हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है। विधान मे हिन्दी गौरवान्वित हुई है। पर वह अपने पद को पूरा पूरा प्राप्त नहीं कर पाई है। कोई-न-कोई बहाने हमारे सामने रखे जाते रहे हैं। पारिभाषिक शब्दों की कमी की बात कही जाती रही है। श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—'पारिभाषिक शब्दों के निर्माण के नाम पर अथवा और किसी बहाने से हिन्दी के प्रचार और प्रसार में यदि विलम्ब किया गया तो आनेवाली पीढ़ी हमें क्षमा नहीं करेगी। उनकी दृष्टि में पारिभाषिक शब्दों का बहाना एक छल-सा मालूम पड़ता है। पारिभाषिक शब्दों के झगड़े को वे व्यर्थ मानते हैं। ऐसे प्रश्न को उठाकर हिन्दीकरण का विरोध किया जाता है। उन्होंने कहा भी है—मेरे विचार से तो पारिभाषिक शब्दों का अड़ंगा हिन्दी विरोधियों द्वारा उपस्थित किया जा रहा है। वे मानते हैं–पारिभाषिक शब्द एक दिन में नहीं बनते हैं। समय के क्रम में उनका निर्माण होता है। राष्ट्र-भाषा का प्रश्न केवल हमारे लिए ही नहीं है। यह प्रश्न तो और देश में भी उठाया गया होगा। रूस और चीन में भी यह प्रश्न

उठा था, पर पारिभाषिक शब्दों के लिए इस प्रश्न को टाला नहीं गया था। भारत में भी अंग्रेजों ने जब अंग्रेजी को राज्य-भाषा के रूप में व्यवहार किया, तब उन्होंने व्यवहार के शब्दों को पारिभाषिक शब्दों के रूप में ग्रहण किया। वे जबतक भारत में रहे, तब तक उन्होंने पारिभाषिक शब्दों का प्रश्न कभी नहीं उठाया। श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित जी का मत है कि जिस प्रकार अंग्रेजों ने भारत में प्रचलित बहुतेरे शब्दों को अपनी भाषा में ले लिया, उसी प्रकार हमें भी चाहिए कि उन शब्दों को, जिन्हें हम और हमारे बच्चे सुगमतापूर्वक समझ और लिख ले सकते हैं, हम सहर्ष और सम्मानपूर्वक स्वीकार करें।" दीक्षित जी पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट हैं। अंग्रेजों ने प्रशासन के लिए मुगलों के पारिभाषिक शब्दों को—जैसे सदराला, नाजिर, वकील, दारोगा, सूबेदार, हवलदार, गुमाश्ता आदि शब्दों को जब ग्रहण किया, तब हमें प्रशासन के लिए रेल, स्टेशन, रजिस्ट्री, कचहरी, कोर्ट, कलक्टर, जज, डाक्टर, सिविल सर्जन, इंजिनियर आदि शब्दों के लिए पारिभाषिक शब्दों के निर्माण की कोई आवश्यकता नहीं है। दीक्षित जी मानते हैं कि इन शब्दों को हमें स्वीकार करना चाहिए।

हिन्दी के विरोध में कहा जाता है कि वह लादी जा रही है। हिन्दी का साम्राज्य फैलाया जा रहा है। हिन्दी का विरोध १८ वर्षों में जितना हुआ है, उतना शायद कभी नहीं हुआ है। जब अंग्रेज भारत में थे, तब आज के हिन्दी

विरोधियों ने भी हिन्दी के लिए आन्दोलन किया था। उनकी सेवाओं को हम भूल नहीं सकते। उनके प्रति हमें नतमस्तक होना पड़ता है। बंगाल और मद्रास में हिन्दी का विरोध कुछ देखा जाता है। दीक्षित की दृष्टि से यह विरोध बाहरी विरोध है, कुछ निजी स्वार्थ के लिए विरोध है। उस प्रकार का विषाक्त वातावरण बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। दीक्षित जी ने कहा है— 'यह स्मरण रखने की बात है कि एक भाषा अथवा एक लिपि के पक्ष में नारा बुलन्द करनेवाले न्याय-मूर्त्ति शारदा चरण मित्र, अमृत लाल चक्रवर्ती, मणीन्द्रचन्द्र नन्दी और आशुतोष मुखर्जी जैसे दूरदर्शी और देशभक्त विद्वान अहिंदी भाषी थे।' आज भी बंगाल और मद्रास में अधिक लोग हैं, जो हिन्दी का समर्थन करते हैं और मानते हैं कि भारत को अखंड बनाने में हिन्दी का योगदान बहुत बड़ा है। हिन्दी का विरोध भारत की अखण्डता का विरोध है, भारतीय राष्ट्रीयता का विरोध है। उसे तो दीक्षित जी भारत के विधान का अप-मान मानते हैं। जिस प्रकार बंगाल और मद्रास में हिन्दी का विरोध होता है, उसी प्रकार हिन्दी के समर्थन में आंदोलन करने की बात उठाई जाती है, तब दीक्षित जी उदार वृत्ति से काम लेने के पक्ष में हो जाते हैं। वे मानते हैं, हिन्दी प्रदेश में त्याग और बलिदान की भावना अहिन्दी प्रदेशों से कम नहीं है। सारा इतिहास इसका प्रमाण रखता है। पर बिहार बापू की कर्मभूमि रहा है। हम यहाँ पर कोई आन्दोलन नहीं करेंगे, जिसका सम्बन्ध हिंसा से हो। अगर हिन्दी के समर्थन में आन्दोलन

करना ही होगा, तब दीक्षित जी कहते हैं, उसका मार्ग बिहार के लिए गान्धी जी का मार्ग होगा। वे सत्याग्रह करेंगे। डाक्टर लक्ष्मीनारायण सुधांशु जी ने जब यह घोषणा की कि हिन्दी के समर्थन में वे सत्याग्रह करेंगे तब श्री दीक्षित जी ने सुधांशु जी का समर्थन किया। उन्होंने कहा है कि मद्रास की तरह हमारे बच्चे हिन्दी के समर्थन के लिए आग लगाकर नहीं जलेंगे। अगर आवश्यकता हुई तो बिहार में उनके पिता, चाचा और दादा अनेक हैं, जो सत्याग्रह कर हिन्दी के प्रश्न पर प्राण दे सकते हैं। और उन्होंने अपने को उसके लिए अर्पण किया। किसी भाषा के प्रति दीक्षित जी को कोई द्वेष नहीं है। द्वेष हो भी कैसे? वे तो कहते हैं कि वंश-अपभ्रंश से प्रायः आधुनिक भारतीय भाषाओं का आविर्भाव हुआ है, एक ही जमीन पर सभी लालित-पालित हुई हैं। एक ही साथ मिलकर सबने देश, समाज तथा साहित्य की सेवा की है। इस कारण भारतीय भाषा में उनकी दृष्टि से कोई मतभेद का प्रश्न नहीं है। वे तो चाहते हैं कि अन्य भारतीय भाषायें हिन्दी की सखी-सहेलियों के रूप में शोभावान हैं। भगवान से वे सदा यह प्रार्थना करते रहते हैं कि 'राजनीति-मन्थरा हमारे इस मंगल महोत्सव के मार्ग में बाधा न बने।' हिन्दी को अपने घर से १४ वर्ष बनवास राजनीतिज्ञों के चलते मिला था, तब उन्होंने उन राजनीतिज्ञों को मन्थरा कहा था। वे आज भी मानते हैं—वे मन्थरा की नीति से चलते हैं, घर में फूट डालकर अपनी गोटी लाल करते हैं। ऐसे राजनीतिज्ञों से देश को साव-

धान रहने को उन्होंने कहा है।

श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित का जन्म, वि० संवत् १६५१ के माघ मास में, सारन जिला के पिरारी गाँव में एक भूमिहार ब्राह्मण परिवार में हुआ था। दीक्षित जी की माँ का देहांत उनके बाल्यकाल में हो गया था। अतः उनका शैशव पिता की छाया में विकसित हुआ। आठ वर्ष की अवस्था में वे अपने पिता के साथ कटिहार चले आये। ऐसे तो उनकी शिक्षा का श्री गणेश गाँव के प्राइमरी स्कूल में हो गया था, पर वहाँ समुचित ढंग से शिक्षा वे नहीं पा रहे थे; अतः उनका नाम कटिहार में लिखाया गया। सन् १६०६ में उन्होंने मिडल परीक्षा पास की। उन्हें छात्रवृत्ति भी मिली थी। उसके बाद आगे पढ़ने के लिए उन्हें मुजफ्फरपुर भेजा गया। मुजफ्फरपुर कालिजियट स्कूल में उन्हें दाखिल कराया गया। वहीं से उन्होंने मैट्रिक परीक्षा सन् १६१३ में पास की। मुजफ्फरपुर में ही कालेज की शिक्षा उनकी आरम्भ हुई। सन् १६१५ में आई० ए० परीक्षा उन्होंने पास की। उनकी इच्छा बी० ए० करने की थी। बी० ए० में उनका नाम भी लिखाया गया। पर बी० ए० वे नहीं कर सके। आर्थिक संकट के कारण उनके लिए बी० ए० करना सम्भव नहीं था। इसी कारण उन्होंने पढ़ाई छोड़ दी। आर्थिक-समस्याओं के समाधान में वे लग गये।

शिक्षक के रूप में दीक्षित जी ने जीवन में प्रवेश किया। आज भी किसी न किसी रूप में लोगों को शिक्षा देते रहते हैं। जब कभी वे पटना आते हैं, तब उनके यहाँ उनके शिष्यों की

मण्डली जमा हो जाती है। लोग उन्हें गुरुजी कहते हैं। गुरुजी से दीक्षितजी का बोध होता है। साहित्यिकों के वे गुरु रहे हैं। आज भी बुला-बुलाकर उनकी रचनाओं को देखकर वे शुद्ध करते हैं; आगे लिखने के लिए शिक्षा देते हैं, विषय देते हैं। इतना ही नहीं, वे चाहते हैं, उनके आदेशों का पालन हो। मुजफ्फरपुर कालिजिएट स्कूल में वे शिक्षक के पद पर बहाल हुए। वे बहुत ही लोकप्रिय शिक्षक बन कर रहे थे। जब मैं मुजफ्फरपुर में पदस्थापित था—तब उनके कई शिष्यों से मिलने का अवसर मिला था। दीक्षित जी का दर्शन करने का प्रथम अवसर मुझे आरा अधिवेशन में मिला था, जब बेनीपुरी जी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष थे। उस समय दीक्षित जी मुजफ्फरपुर से प्रकाशित 'नवयुवक' के सम्पादक थे। आरा अधिवेशन के समय 'नवयुवक' के अंक में सम्मेलन के भावी प्रधान मन्त्री के सम्बन्ध में उनका एक नोट छपा था। बेनीपुरी जी के साथ मैं सम्मेलन का एक मंत्री बना जब बेनीपुरी जी सम्मेलन के सभापति हो गये थे, तब दीक्षित जी ने यह विचार व्यक्त किया था कि उमाशंकर जी को उनका उत्तराधिकारी बना दिया जाय। तब तक दीक्षित जी से मेरा सम्पर्क नहीं था। और मन में कई बार यह प्रश्न उठा कि उतना दायित्वपूर्ण पद देकर वे क्यों मुझे गौरवान्वित करना चाहते हैं। मुझे पता चला कि सम्मेलन के लिये दीक्षित जी को बड़ी चिन्ता रहती है। उसकी देख-रेख में वे लगे रहते हैं। सम्मेलन के हर कार्यकर्त्ता को वे जानते हैं। बाद में उनसे मेरा सम्पर्क

हुआ। मैंने उन्हें देखा है—सम्मेलन के लिए उन्हें जितनी चिन्ता रहती है, शायद उन्हें उतनी अपने परिवार की चिंता नहीं रहती है। महीनों सम्मेलन में रह कर उन्होंने सम्मेलन का काम किया है। उसके भवन-निर्माण का कार्य कराया है। सम्मेलन के संस्थापकों में वे एक रहे हैं। जहाँतक मुझे स्मरण है, दीक्षित जी सम्मेलन के प्रथम प्रधान मन्त्री रहे हैं। सम्मेलन के उत्थान-पतन को उन्होंने देखा है। सम्मेलन का इतिहास उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। मुझे तो ऐसा लगता है, सम्मेलन का कोई भी महत्वपूर्ण कार्य नहीं है, जिसमें कि दीक्षित जी का हाथ नहीं हो। सम्मेलन का उन्हें मैं प्राण मानता हूँ।

हिन्दी के प्रति उनकी अनुरक्ति मुजफ्फरपुर में हुई। तिरहुत समाचार और मिथिला-मिहिर के सम्पादक पं० योगानन्द कुँअर के सम्पर्क में जब दीक्षित आये तब उनमें हिन्दी का प्रेम जागरित हुआ। लिखने की प्रवृत्ति भी उन्हीं दिनों उनमें आई थी। 'सेवा-क्षेत्र' उनकी पुस्तक उन्हीं दिनों प्रकाशित हुई थी। हिन्दी-प्रचार के लिए साहित्यिक संस्थाओं की स्थापना होने लगी थी। उन्हीं दिनों, जब वे मुजफ्फरपुर में थे, तब नवयुवक समिति की स्थापना उनके मित्र ललित कुमार सिंह नटवर ने की थी। उनके कार्यों में दीक्षित जी का भी योगदान रहता था। बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना उसी समय हुई थी। दीक्षित जी ने साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में काम किया है। इतिहास, जीवनी, साहित्य, इन साहित्यिक विधाओं पर उन्होंने अच्छा काम किया है। 'बाबू कुँअर सिंह' की जीवनी प्रथम बार हिन्दी में लिखकर उन्होंने

जीवनी साहित्य में एक नया अध्याय जोड़ा है। उनकी निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हैं—(१) सेवा क्षेत्र, (२) बाबू कुँअर सिंह, (३) नादिरशाह, (४) गोविन्दगीतावली (टीका), (५) वैशाली, (६) सर गणेशदत्त (७) चाणक्य, (८) पुण्ड्रवर्द्धन का इतिहास। इन प्रकाशित ग्रन्थों से अधिक उनके और ग्रन्थ हैं, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुए हैं। उनमें वैशाली-दर्शन, ज्योतिरीश्वर और 'वर्जन रत्नाकर', भारतीय संस्कृति तथा आत्म-दर्शन बहुत ही उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। आज भी ७३ वर्ष की आयु में दीक्षित जी 'पंजाब के शास्त्री वंश का इतिहास' तथा सन् १७५७ के विप्लव के बिहारी-वीर महाराज फतह सिंह का इतिहास लिख रहे हैं। दीक्षित जी ने कई पत्रों का सम्पादन भी किया है। देश, तरुण भारत और नवयुवक के संपादक रहे हैं। वे दरभंगा नरेश के साहित्यिक सहायक भी सन् १९२३ से लेकर १९३६ ई० तक रहे हैं। इसी बीच वे सन् १९२९ से १९३४ ई० तक दरभंगा-राज पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष भी रहे। दीक्षित जी का सम्बन्ध तो कई संस्थाओं से रहा है। पर वे मानते हैं कि वास्तविकता यह है कि उनका सम्बन्ध एकमात्र बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन से रहा है। उनसे मैंने एक प्रश्न किया था 'हिन्दी साहित्य में क्या परिवर्तन-परिवर्द्धन आप चाहते हैं?' उन्होंने मुझे उत्तर दिया है—'यह विषय बहुत व्यापक है। हिन्दी भाषा और साहित्य में बहुत व्यापक परिवर्तन और परिवर्द्धन की आवश्यकता है। राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त करने के लिए हिन्दी साहित्यकारों को अन्यान्य देश भाषाओं के अध्ययन और अनुशीलन की आवश्यकता है। हिन्दी को अब हमलोग अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रवेश प्राप्त कराना चाहते हैं।'

भगवान से हमारी प्रार्थना है कि दीक्षित जी को दीर्घजीवी बनायें। इन शब्दों के साथ मैं श्रद्धा से उनके सामने नतमस्तक हूँ।